ओ३म्

आर्यसमाज के शास्त्रार्थमहारथी

लेखक :

प्रो० भवानीलाल भारतीय

एम. ए., पीएच. डी., सिद्धान्तवाचस्पति, साहित्यरत्न
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष—
दयानन्द अनुसंधान पीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

प्रकाशक :

वैदिक पुस्तकालय, दयानन्दाश्रम; अजमेर

द्वितीय संस्करण ２०४१ वि०

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारत की प्राचीन वैचारिक प्रणाली में शास्त्रार्थ को एक नितान्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उपनिषद् कालीन ऋषि मुनि आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थ प्रणाली से विचार विमर्श, तत्त्व जिज्ञासा तथा मोक्ष धर्म विवेचन करते थे। राजर्षि सम्राट् जनक की सभा में ब्रह्मजिज्ञासु, अध्यात्मनिष्ठ महर्षियों के बीच ब्रह्मवादिनी गार्गीवाचक्नवी तथा याज्ञवल्क्य के आध्यात्मिक विषयों पर संवाद शास्त्रार्थ का ही प्राचीनतम रूप था। कालान्तर में जब शंकर भगवत्पाद ने अपने अद्वैत सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित करने के लिये भारत का भ्रमण किया तो उन्होंने भी विभिन्न साम्प्रदायिक आचार्यों तथा धर्मगुरुओं से शास्त्रार्थ किये। शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य, कापालिक आदि सम्प्रदायों के आचार्यों तथा जैन, बौद्ध, लोकायत आदि वैदिक धर्मेतर सम्प्रदायों के अनुयायी विद्वानों से भी उनके शास्त्रार्थ हुये। इन शास्त्रार्थों का रोचक एवं विशद विवरण माधव कृत 'शंकर दिग्वजय' में विस्तारपूर्वक दिया गया है। जिन वैष्णव आचार्यों ने शंकराचार्य के ज्ञानाश्रित अद्वैतवेदान्त को अस्वीकार कर भक्ति प्रधान दर्शन का सूत्रपात किया, उन्होंने भी अपने विपक्षियों को शास्त्रार्थ प्रणाली द्वारा ही पराजित किया था। रामानुज, वल्लभ, रामानन्द आदि के दिग्विजय ग्रन्थों में उनके शास्त्रार्थों का उल्लेख हुआ है। जैन और बौद्ध दार्शनिकों से नैयायिक तथा वेदान्ती दार्शनिकों के शास्त्रार्थ भी कम रोचक नहीं होते थे।

भारत के आधुनिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण के सूत्रधार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शताब्दियों से विलुप्त शास्त्रार्थ प्रणाली का पुनरुद्धार किया। उन्होंने धर्म के वास्तविक तत्त्वों के पुनर्निर्धारण हेतु अपने समकालीन विभिन्न मतानुयायियों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये। स्वभावतः पौराणिक विद्वानों से होने वाले उनके शास्त्रार्थों की संख्या अधिक थी, क्योंकि ऋषि दयानन्द उस वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये उत्सुक थे जिस पर मध्यकालीन पुराण प्रतिपादित, रूढ़िगामी, प्रतिक्रियावादी विचारधारा का प्रभाव इतना अधिक पड़ चुका था कि जिसके परिणाम स्वरूप सनातन काल से चले आ रहे वैदिक एवं आर्ष ग्रन्थों पर आधारित धर्म का स्वरूप ही पूर्णतः परिवर्तित हो चुका था। स्वामीजी के शास्त्रार्थ अन्य धर्मावलम्बियों से भी हुये जिनमें इस्लाम, ईसाईमत तथा जैनधर्म के अनुयायी सम्मिलित थे। अपने कलकत्ता प्रवास काल में महर्षि ने समकालीन ब्रह्मसमाज के नेताओं तथा महाराष्ट्र प्रवास में प्रार्थनासमाज के प्रवर्त्तकों से भी विचार विनिमय किया था।

ऋषि दयानन्द के पश्चात् लगभग आधी शताब्दी तक आर्यसमाज में शास्त्रार्थों की धूम रही। पौराणिक, ईसाई, मुसलमान आदि सभी से शास्त्रार्थ होते। सहस्रों की संख्या में लोग इन शास्त्रार्थों को सुनने के लिये एकत्रित होते तथा दोनों पक्षों के विचारों को सुनकर सत्यता के निकट पहुंचने का प्रयास करते। अकसर यह कहा जाता रहा कि शास्त्रार्थों से हिन्दू समाज के विभिन्न घटकों तथा भारत के विभिन्न मतावलम्बियों के बीच का सौहार्द भाव समाप्त होता है तथा अनावश्यक द्वेष भाव उत्पन्न होता है। परन्तु यह विचार नितान्त एकांगी है। वास्तविक धर्म को जानने की जिज्ञासा मानवमात्र में सहजरूप से विद्यमान रहती है। यदि पूर्वाग्रह का परित्याग कर विशुद्ध भाव से शास्त्रार्थ किया जाय तो कोई कारण नहीं कि आम जनता

को बहुत कुछ मार्गदर्शन प्राप्त न हो। आर्यसमाज में ऐसे महारथी विद्वान् हुये हैं जो बिना किसी कटूक्ति, व्यंग्य या आक्षेप का प्रयोग किये शास्त्रार्थ के द्वारा विरोधी को अपने अनुकूल बनाकर अपना पक्ष स्वीकार करा सके हैं। ऐसी स्थिति में शास्त्रार्थ प्रणाली का औचित्य स्वतः सिद्ध है।

इस वर्ष ऋषि दयानन्द के मूर्तिपूजा पर हुये आज से १०० वर्ष पूर्व के काशी शास्त्रार्थ की शताब्दी समारोह का आयोजन वाराणसी में किया गया। इसी संदर्भ में यह आवश्यक जान पड़ा कि विगत १०० वर्षों में आर्यसमाज के जिन जिन शास्त्रार्थ महारथियों ने अपनी अपूर्व विद्वता, तर्कशक्ति, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि गुणों के कारण विरोधी विद्वानों को शास्त्रार्थ समर में पराभूत किया है, उनके इतिवृत्त तथा संस्मरणों को संगृहीत किया जाय। शताब्दी महोत्सव के कुशल संयोजक प्रिन्सिपल महेन्द्रप्रताप शास्त्रीजी की प्रेरणा से इन पंक्तियों के लेखक ने इस गुरुतर कार्य को पूरा करने का विनम्र प्रयास किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में आर्यसमाज के ५३ दिवंगत तथा ७ विद्यमान शास्त्रार्थमहारथियों का इतिवृत्त संग्रह किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि आर्यसमाज के क्षेत्र में इनके अतिरिक्त अन्य शास्त्रार्थी विद्वान् थे ही नहीं या वर्तमान में भी नहीं हैं। विगत काल में भी ऐसे अनेक विद्वान् रहे होंगे जिनका विवरण उपलब्ध करना हमारे लिये सम्भव नहीं हो सका और कतिपय विद्यमान शास्त्रार्थी विद्वानों के विवरण भी हमें प्रयास करने पर भी प्राप्त नहीं हो सके, अतः हम क्षमा प्रार्थी हैं। पाठक इस ग्रन्थ को पढ़कर यह अनुमान लगा सकेंगे कि अधिकांश शास्त्रार्थ पौराणिक विद्वानों से ही हुये हैं और जो विषय बार-बार शास्त्रार्थ हेतु उपस्थित किये गये वे हैं मूर्तिपूजा, अवतारवाद, मृतकश्राद्ध, वर्णव्यवस्था, यज्ञ में पशुहिंसा, नियोग, विधवाविवाह, ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की वैदिकता, पुराणों की शिक्षाओं का वेद विपरीत होना

आदि। दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थ बहुत कम हुये। जैनियों से होने वाले शास्त्रार्थ ही ईश्वर के सृष्टिकर्ता होने या न होने, सृष्टि की अनादिता आदि दार्शनिक विषयों पर हुये। ईसाई और मुसलमानों से होने वाले शास्त्रार्थों के विषय थे-कुरान अथवा बाइबिल का ईश्वरीय ज्ञान होना, चमत्कारों का औचित्य, पापों का क्षमा किया जाना, पुनर्जन्म, जीव की अनादिता आदि। पौराणिक पण्डित जो आर्यसमाज से शास्त्रार्थ करने के लिये सदा आगे आया करते थे उनमें प्रमुख थे, पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र, पं. भीमसेन शर्मा, पं. अखिलानन्द, पं. श्रीकृष्ण शास्त्री, पं. कालूराम, पं. जगत्प्रसाद, पं. माधवाचार्य आदि।

सम्भव है इस पुस्तक में आर्यसमाज के सभी दिवंगत या जीवित शास्त्रार्थमहारथियों का उल्लेख न हो पाया है। सामग्री का संग्रह शीघ्रता में किया गया है अतः त्रुटियाँ अपेक्षित हैं। शास्त्रार्थी विद्वानों का इतिवृत्त संग्रह करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आर्यसमाज के इतिहास लेखन तथा पुरातन इतिवृत्त संग्रह के प्रति जो उपेक्षा दिखाई जा रही है उससे मुझे भय है कि कहीं थोड़े समय पश्चात् आर्यजमाज के इन पुरुषाओं का नाम शेष ही न रह जाय। विद्वानों की जन्म तथा निधन तिथियों को भी हम भूल रहे हैं, उनके सम्पूर्ण जीवन की प्रवृत्तियों तथा कार्यों की जानकारी तो दूर की बात है। निकट भविष्य में मेरा प्रयास आर्यसमाज के दिवंगत तथा वर्तमान सभी साहित्यकारों तथा विद्वानों का एक सर्वांगीण जीवन परिचय प्रधान ग्रन्थ निकालने का है। यदि यह कार्य हो गया तो आर्यसमाज के उन मूर्धन्य विद्वानों तथा लेखकों की स्मृति को हम सुरक्षित रख सकेंगे जो आज हमारे बीच नहीं हैं। पं. देवप्रकाशजी ने आर्यसमाज के महापुरुषों के जीवन तथा कार्य (प्रथम भाग) लिख कर एक उल्लेखनीय कार्य अवश्य किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कतिपय शास्त्रार्थी विद्वानों का इतिवृत्त इसी ग्रन्थ पर आधारित है। इसी प्रकार 'गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर का ५० वर्षीय इतिहास' पं. बुद्धदेव मीरपुरी

की ब्र. जगदीश विद्यार्थी लिखित 'जीवनयात्रा' आदि ग्रन्थों से भी मुझे प्रभूत सहायता मिली है। मैं इन पुस्तक लेखकों का कृतज्ञ हूँ। परिशिष्ट में पाठकों के ज्ञानवर्धन के लिये प्रकाशित शास्त्रार्थों की एक सूची भी देदी गई है। यदि पाठक, इस प्रयास को हार्दिकता से ग्रहण करेंगे तो लेखक अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

रिक्त स्थान पूर्ति की दृष्टि से ऋषि दयानन्द की कतिपय महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ, ऋषि दयानन्द विषयक कतिपय महत्त्वपूर्ण उल्लेख तथा शास्त्रार्थविषयक कुछ रोचक शास्त्रीय प्रसंग प्रस्तुत किये गये हैं। आशा है वे अपनी नवीनता की दृष्टि से पाठकों को पर्याप्त रोचक तथा हृदयग्राही प्रतीत होंगे।

पुस्तक का प्रकाशन सम्भव नहीं होता यदि ऋषि दयानन्द की स्थानापन्न श्रीमती परोपकारणी सभा के उत्साही एवं सुयोग्य मंत्री श्री श्रीकरणजी शारदा तथा सभा के वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध पुस्तकाध्यक्ष पं. भगवानस्वरूपजी न्यायभूषण इसे प्रकाशित करने की आज्ञा प्रदान नहीं करते। अतः इन दोनों महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना आवश्यक है।

दयानन्द आश्रम, अजमेर। विदुषां वशंवद,
चैत्र शु. पंचमी २०२७ वि. **भवानीलाल भारतीय**
(आर्यसमाज स्थापना दिवस) एम. ए., पी-एच. डी.

महापुरुषों में अग्रणी—

"जिस क्षण देह में दुर्बलता प्रतीत हो उसी क्षण एक महान् विशालकाय गुजराती का स्मरण करो। जिस क्षण तुम्हारे मन में शिथिलता या कायरता का प्रवेश हो, उसी क्षण जीवन और उत्साह से ओतप्रोत उस तेजस्वी देशभक्त का स्मरण करो। जिस क्षण तुम्हारे हृदय में मोह और विलास का साम्राज्य प्रवर्तित हो उसी क्षण धन को ठोकर मारने वाले उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी की ओर दृष्टि करो। अपमान से आहत होकर जिस क्षण तुम नजर ऊंची न उठा सको, उसी क्षण हिमालय के समान अडिग और उन्नत व्यक्ति के ओजस्वी मुख को अपनी कल्पना में उपस्थित करो। मृत्यु वरण करते हुये डर लगे तो उस निर्भयता की मूर्ति का ध्यान करो। द्वेष भाव से उत्तप्त होकर जब तुम्हें अपने विरोधी को क्षमा करने में हिचकिचाहट हो तो उसी क्षण विष पिलाने वाले को आशीर्वाद देते हुये एक रागद्वेषमुक्त संन्यासी को याद करो। वह गुजराती व्यक्ति स्वामी दयानन्द है। यह गौरवशाली पुरुष भारतीय महापुरुषों में अग्रस्थान पर विराजमान है।

—रमणलाल वसन्तलाल देसाई

प्रकाशकीय

१८६९ ई. में महर्षि दयानन्द ने काशी के शीर्षस्थ विद्वानों से मूर्तिपूजा की वैदिकता पर शास्त्रार्थ किया था। १४ वर्ष पूर्व समस्त देश में उस महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ की स्मृति में 'शास्त्रार्थ शताब्दी उत्सव, मनाया गया था। उस समय यह आवश्यकता अनुभव की गई कि आर्यसमाज के दिवंगत तथा विद्यमान शास्त्रार्थमहारथियों के इतिवृत्त तथा शास्त्रार्थ विवरणों को संग्रह कर प्रकाशित किया जाय। हमारी इस प्रार्थना को आर्यसमाज एवं ऋषिदयानन्द के विषय में नूतन अनुसंधान सामग्री का अन्वेषण करने में तत्पर डॉ. भवानीलालजी भारतीय ने सहर्ष स्वीकार करते हुये इस पुस्तक की बहुमूल्य सामग्री को संकलित किया था, तदर्थ हम उनके आभारी हैं। परम पदारूढ़ स्वामी दयानन्द सरस्वती की स्थानापन्न श्रीमती परोपकारिणी सभा के तत्त्वावधान में प्रकाशित इस ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये हमें हार्दिक प्रसन्नता अनुभव हो रही है। आशा है आर्य जनता इसका तत्परतापूर्वक स्वागत करेगी एवं लाभ उठायेगी। सुन्दर मुद्रण के लिये वैदिक यंत्रालय के कुशल प्रबंधक श्री सतीश शुक्ल साधुवाद के पात्र हैं।

श्रीकरण शारदा
मंत्री
श्रीमती परोपकारिणी सभा

दयानन्दाश्रम अजमेर।
शिवरात्रि २०४० वि.

अनुक्रमणिका

दिवंगत शास्त्रार्थ महारथी

पृष्ठ

शास्त्रार्थ महारथी (वर्तमान)

पतितपावनी दयानन्द गंगा की परिक्रमा–

परमहंसगण गंगा की उत्पत्ति भूमि से आरम्भ करके गंगा के किनारे किनारे विचरते हुये गंगा सागर तक गमन करके अपने परिक्रमण का कार्य समाप्त समझते हैं। मैंने भी दयानन्द के जन्मगृह के आरम्भ करके उनकी श्मशान-भूमि तक पर्यटन किया है। टंकारा से जिसके जीवापुर मुहल्ले के जिस घर में उन्होंने जन्म लिया था उससे प्रारम्भ कर अजमेर के तारागढ़ के नीचे अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस निदारुण श्मशान भूमि को देख कर आये हैं जहाँ उस भारत के सूर्य दिव्यदेह को चितानल ने कुछ मुट्ठी भर भस्म में परिणत कर दिया था।.........कोई कोई संन्यासी कहते हैं कि हरिद्वार से प्रारम्भ कर के गंगा सागर तक पर्यटन करने में प्रायः तीन वर्ष लगते हैं परन्तु हमने दयानन्द गंगा के परिक्रमण में प्रायः पन्द्रह वर्ष काटे हैं। संन्यासी परमहंसगण अपने विश्वास में गंगा परिक्रमण वा नर्मदा परिक्रमण से कुछ न कुछ पुण्यार्जन करते हैं। पाठक ! तो क्या हमने दयानन्द-गंगा परिक्रमण करके कुछ पुण्यार्जन न किया है?

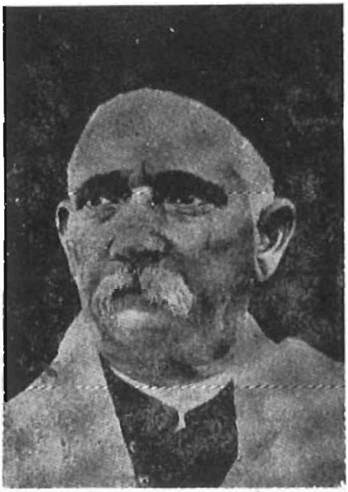
—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय—ऋषि जीवनचरित की भूमिका में



स्वामी दयानन्दजी सरस्वती



बूंदी शास्त्रार्थ के महारथी
ब्र० नित्यानन्दजी



पं० मुरारीलालजी शर्मा



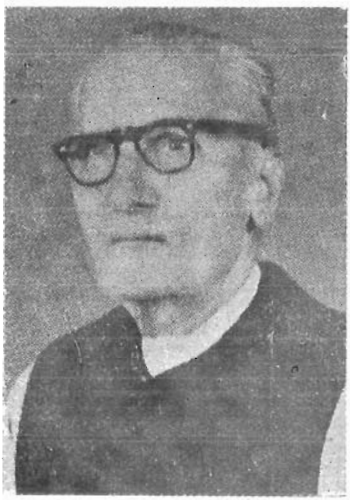
पं० विद्याभिक्षुजी



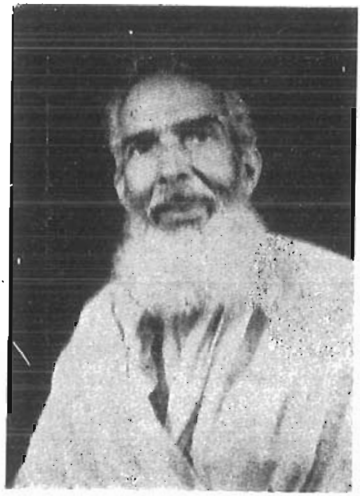
पं० मनसारामजी वैदिक तोप



पं० भगवद्दत्तजी बी. ए.



पं० भगवानस्वरूपजो न्यायभूषण



पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड

१. दण्डी स्वामी विरजानन्द

आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथियों की परम्परा में महर्षि दयानन्द के विद्यागुरु प्रातःस्मरणीय दण्डी विरजानन्द को आद्य स्थान मिलना चाहिये, यद्यपि उनका शास्त्रार्थ काल आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व का ही है। विरजानन्द का जन्म स्थान पंजाब प्रान्त में जालन्धर के निकट कर्तारपुर कस्बे के समीप का गंगापुर ग्राम था। इनके पिता श्री नारायणदत्त शर्मा सारस्वत ब्राह्मण थे। विरजानन्द का जन्म वि. सं, १८३५ के पौष के आस पास हुआ। बाल्यावस्था में ही शीतला के प्रकोप के कारण यह सारस्वत-कुलभूषण बालक नेत्रहीन हो गया। माता पिता के शैशवास्था में ही दिवंगत हो जाने तथा भाई भौजाई के दुर्व्यवहार से खिन्न होकर यह बालक अपने घर से निकल गया। यत्र तत्र भ्रमण करते हुए विरजानन्द ऋषिकेष आये। यहाँ गायत्री के जप में अपना अधिकांश समय लगाने लगे। हरिद्वार में पूर्णानन्द सरस्वती नामक संन्यासी से दीक्षा लेकर विरजानन्द बने। अब सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन प्रारम्भ किया, पुनः गंगा तट पर विचरण करते करते काशी पहुंचे। यहाँ रहकर पर्याप्त समय तक विद्याभ्यास किया। पुनः वाराणसी, गया होते हुये कलकत्ता और गंगासागर तक पर्यटन करते रहे। इस प्रकार पुण्यतोया भागीरथी की परिक्रमा समाप्त कर पुनः हरिद्वार आये। कुछ समय तक शूकर क्षेत्र में निवास किया।

अलवर नरेश महाराजा विनयसिंह के अनुरोध को स्वीकार कर दण्डीजी कुछ काल तक अलवर में रह कर राजा को संस्कृत पढ़ाते रहे। लगभग ३॥ वर्ष तक चलने वाला यह अध्ययन सत्र अचानक ही समाप्त हो गया जब एक

दिन राजा विनयसिंह प्रमाद-वश श्रीसेवा में अध्ययन हेतु उपस्थित नहीं हुये। अलवर से चलकर दण्डी जी कुछ समय तक सोरों विराजे। पुनः १९०२ वि. में मथुरा पधारे और एक छोटा सा स्थान लेकर संस्कृत पढ़ाने का कार्य करने लगे।

अपने मथुरा निवास के प्रसंग में ही दण्डी विरजानन्द को शास्त्रार्थ संग्राम का अद्वितीय महारथी सिद्ध होने का अवसर मिला। वि. सं. १९१६ में जब सुप्रसिद्ध वैष्णव सम्प्रदायाचार्य रंगाचार्य के गुरु श्रीकृष्ण शास्त्री मथुरा में निवास कर रहे थे, एक ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ जिसमें दण्डी जी को अपने व्याकरण ज्ञान का उत्कृष्ट परिचय देना पड़ा। 'अजाद्युक्ति' शब्द में कौन सा समास है? दण्डी जी के शिष्य चौबे गंगादत्त और रंगदत्त इसमें षष्ठी तत्पुरुष बता रहे थे जब कि कृष्ण शास्त्री ने इसमें सप्तमी तत्पुरुष बताया। दण्डी जी ने षष्ठी तत्पुरुष पक्ष का जब समर्थन किया तो कृष्ण शास्त्री दण्डी जी को शास्त्रार्थ के लिये आहूत कर बैठे। कृष्ण शास्त्री के धनाढ्य शिष्य सेठ राधाकृष्ण ने अपने गुरु को शास्त्रार्थ समर से मुक्त रखने के लिये अनेक चालें चलीं। प्रथम तो कहा गया कि शास्त्री जी की ओर से उनके दो शिष्य लक्ष्मण शास्त्री तथा मुरमुरिया पण्ड्या दण्डीजी से शास्त्रार्थ करेंगे। दण्डीजी ने इसे अस्वीकार करते हुए कहला दिया कि शास्त्रीजी के शिष्य मेरे शिष्यों से शास्त्रार्थ कर सकते हैं, मेरा साम्मुख्य तो कृष्ण शास्त्री से ही होगा। अब सेठ राधाकृष्ण ने एक और चतुराई की बात सोची। उन्होंने दण्डीजी को कहलाया कि २०० रु. शास्त्रीजी दें तथा २०० रु. दण्डीजी। इनमें १०० रु. स्वयं सेठ जी मिलायेंगे और यह पांच सौ रु. की राशि शास्त्रार्थ विजेता को पुरस्कार स्वरूप प्रदान की जायगी। सेठ ने सम्भवतः सोचा होगा कि दरिद्र संन्यासी २०० रु. कहाँ से देगा और इस प्रकार यह शास्त्रार्थ संगर टल जायगा, परन्तु दण्डीजी ने तुरन्त २०० रु. भेज दिये अब तो शास्त्रार्थ का होना अनिवार्य हो गया।

गतश्रम नारायण के मंदिर में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। उपर्युक्त मंदिर में दण्डीजी ने अपने शिष्यों को यह आदेश देकर भेजा कि जब कृष्ण शास्त्री शास्त्रार्थ स्थल पर आ जावें तब उन्हें सूचित कर दिया जाय, ताकि वे भी तत्काल उपस्थित हो सकें। परन्तु शास्त्रीजी को न तो आना था और न वे आये। सेठ जी ने नाम मात्र का शास्त्रार्थ दोनों विपश्चितों की शिष्य मण्डली का करा दिया तथा विरजानन्द के पक्ष को पराजित घोषित कर दिया। ५०० रु. किसी पक्ष को पुरस्कार रूप में न देकर माथुर चतुर्वेदियों में वितरित कर दिये। इस वृत्तान्त को सुनकर दण्डीजी को आश्चर्य और वेदना दोनों ही हुये। राधाकृष्ण ने इतने मात्र से ही संतोष नहीं किया। उसने प्रभूत द्रव्य व्यय कर काशी के पण्डितों से अपने गुरु के पक्ष में व्यवस्था मंगा ली। इस पर प्रज्ञाचक्षु संन्यासी के मुख में तत्काल निम्न उद्‌गार निकल पड़ा—कथं काशी विदुष्मती ? यह काशी नगरी विदुष्मती कैसे ?

इस घटना ने दण्डीजी को संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थों के विषय में पुनः सोचने के लिये विवश कर दिया। अब उन्हें यह प्रतिभात हुआ कि कौमुदी आदि व्याकरण ग्रन्थ अनार्ष हैं, केवल अष्टाध्यायी और महाभाष्य ही आर्ष व्याकरण ग्रन्थ हैं, शेष ग्रन्थ धूर्त चेष्टित हैं। इस क्रान्तदर्शी विचार ने दण्डीजी की पाठशाला में आर्ष युग का प्रवर्तन किया और इसी आर्ष ग्रन्थ प्रमाणवाद ने आर्यसमाज को दृढ़ सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया। दण्डीजी का एक अन्य शास्त्रार्थ सं. १९१७ में तीनमास तक (प्रायः भाद्रपद कृष्णपक्ष से कार्तिक कृष्णपक्ष तक) श्री वैष्णवसम्प्रदाय के प्रतिवादिभयंकर अनन्ताचार्य से हुआ। शास्त्रार्थ मुरसान में हुआ। दण्डीजी मथुरा से नित्य मुरसान जाते और सायंकाल मथुरा लौट आते। तीन मास पश्चात् अनन्ताचार्य ने यह कह कर अपना पीछा छुड़ाया कि आगे शास्त्रार्थ पत्रव्यवहार द्वारा करूंगा। इसी वर्ष कार्तिक शुक्ला २ के पश्चात् वृन्दावन में हिम्मतबहादुर की

कचहरी में वासुदेव स्वामी से भी दण्डीजी का शास्त्रार्थ हुआ। दण्डीजी के के अद्वितीय शिष्य स्वामी दयानन्द भी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे।

दण्डीजी ने अपनी शास्त्रार्थप्रतिभा अपने शिष्य दयानन्द सरस्वती को दाय रूप में प्रदान की। वैयाकरणसूर्य दण्डीजी का परलोक गमन आश्विन कृष्णा १३, सं. १९२५ वि. तदनुसार १४ सितम्बर १८६८ समारोह को ९० वर्ष की आयु में हुआ। उनके निधन पर ऋषि दयानन्द ने 'व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया' कह कर अपने शोकोद्गार व्यक्त किये।

दो बाबों के बीच हम क्यों बोलें—

एक बार नाभा की सिक्ख रियासत में पौराणिकों और आर्यों के बीच शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाज के प्रवक्ता थे महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि। जब पौराणिकों का पक्ष निर्बल पड़ने लगा तो उन्होंने सिक्ख मतावलम्बी नरेश को आर्यसमाज के विरुद्ध भड़काने की चेष्टा करते हुये महाराजा से कहा कि इन आर्यों के गुरु स्वामी दयानन्द अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में बाबा नानक की आलोचना की है। अतः आपको गुरु धर्म के निंदक आर्य-समाजी विद्वानों को राज्य से निष्कासित कर देना चाहिये। परन्तु बुद्धिमान् राजा ने उत्तर दिया धर्मनिरपेक्षता का दम भरने वाले लोगों को उससे शिक्षा लेनी चाहिये। राजा ने कहा नानक भी बाबा और दयानन्द भी बाबा। यदि एक बाबा ने दूसरे बाबा के सम्बन्ध में कुछ लिखा तो उसके बीच में बोलने वाले हम कौन होते हैं।" इस उत्तर को सुनकर पौराणिक चुप हो गये।

—स्व. पं. बुद्धदेवजी विद्यालंकार के सौजन्य से।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन काल में पौराणिक जैन,ईसाई, मुसलमान आदि विभिन्न मतावलम्बी विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये। उनके शास्त्रार्थों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. स्वामीजी का सर्वप्रथम शास्त्रार्थ १८६७ ई. में अनूपशहर निवासी पं. अम्बादत्त पर्वती से अनूपशहर में ही हुआ। विपक्षी पण्डित मूर्ति-पूजा को वैदिक सिद्ध करने में असमर्थ रहा। उसका श्वास फूल गया तथा वह हांफने लगा। उसने मुक्तकण्ठ से स्वामीजी के कथन की सत्यता स्वीकार कर ली।

२. मार्गशीर्ष संवत् १९२४ वि. में रामघाट में स्वामीजी का कृष्णानन्द नामक एक अन्य संन्यासी से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। विपक्षी संन्यासी के मुख में घबराहट के कारण झाग आ गये। मूल विषय को छोड़कर वह नव्य न्याय की बातें करने लगा।

३. स्वामीजी का तृतीय शास्त्रार्थ १९२४ वि. में ही कर्णवास में पं. हीरावल्लभ से हुआ। हीरावल्लभ ने अपनी आराध्य मूर्तियों को एक एक सिंहासन पर स्थापित किया और यह प्रतिज्ञा की कि मैं दयानन्द को शास्त्रार्थ में पराजित कर इन देव प्रतिमाओं को भोग लगवा कर ही उठूँगा। छः दिन तक शास्त्रार्थ चलता रहा। अन्त में पं. हीरावल्लभ ने अपनी पराजय स्वीकार की तथा देवप्रतिमाओं का गंगाजल में विसर्जन कर दिया। स्वामीजी भी पं. हीरावल्लभ की न्यायप्रियता

तथा सत्यपरता से मुग्ध होकर उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

४. संवत् १९२५ में श्रीमहाराज का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ पं. अंगद शास्त्री से हुआ। शास्त्रीजी ने स्वामीजी के कथन की सत्यता स्वीकार कर ली तथा अपनी शालिग्राम शिला को गंगा में विसर्जित कर दिया।

५. संवत् १९२५ में ककोड़े के मेले के अवसर पर पं. उमादत्त बरेली निवासी से महाराज का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। पं. उमादत्त ने मूर्तिपूजा को उचित्त सिद्ध करते हुये एकलव्य द्वारा द्रोणाचार्य की मूर्ति स्थापित करने का दृष्टान्त दिया। स्वामीजी ने कहा कि अज्ञानी भील का कार्य कदापि अनुकरणीय नहीं हो सकता। पं. उमादत्त मौन हो गये।

६. सन् १८६९ ई. में फर्रूखाबाद नगर में स्वामीजी का पं. श्रीगोपाल से शास्त्रार्थ हुआ। पण्डितजी ने मनुस्मृति के 'देवाताभ्यर्चन' इस अध्याय २ के १०१ वें श्लोक के आधार पर मूर्तिपूजा सिद्ध करनी चाही परन्तु स्वामी जी ने इसका अर्थ देवयज्ञ—अग्निहोत्र करना बताया। पंडितजी चुप हो गये।

७. संवत् १९२६ वि. में फर्रूखाबाद में ही पं. हलधर ओझा से स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ का प्रारम्भ तो मूर्तिपूजा से ही हुआ परन्तु थोड़ी देर पश्चात् ही विषयान्तर हो गया और बात व्याकरण की चल पड़ी। स्वामीजी के व्याकरणविषयक प्रश्न का समाधान ओझाजी से नहीं बन पड़ा।

८. कन्नौज निवासी पं. हरिशंकर शास्त्री से स्वामीजी का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ जून १८६९ ई. में हुआ। पराजित हो जाने पर शास्त्रीजी शिखासूत्र त्याग कर संन्यासी बनने के लिये पूर्व प्रतिज्ञानुसार

नुसार तत्पर हो गये, परन्तु स्वामीजी ने उन्हें मना कर दिया तथा उनकी सत्यवादिता की प्रशंसा की।

९. हलधर ओझा से स्वामीजी का एक और शास्त्रार्थ ३१ जुलाई १८६९ ई. को कानपुर में हुआ। कानपुर के सहायक कलक्टर श्री थेन जो स्वयं संस्कृतज्ञ थे, मध्यस्थ बने। शास्त्रार्थ की समाप्ति के पश्चात् 'शोलए तूर' नामक पत्र ने पौराणिकों के कहने में आकर स्वामीजी की पराजय की मिथ्या बात प्रकाशित कर दी। इस पर उक्त शास्त्रार्थ में विद्यमान मध्यस्थ की लिखित सम्मति प्राप्त की गई जिसमें उसने स्वामीजी को विजयी घोषित किया।

१०. १६ नवम्बर १८६९ को स्वामी दयानन्द का काशी के दुर्गाकुण्ड के निकट आनन्द बाग में काशी की पण्डित मण्डली से संसारप्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ। मूर्तिपूजा का औचित्य सिद्ध करने वाले काशी के पण्डितों में स्वामी विशुद्धानन्द, पं. बाल शास्त्री, पं. ताराचरण तर्करत्न, पं. माधवाचार्य, पं. वामनाचार्य आदि प्रमुख थे। इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित 'काशी शास्त्रार्थ' में दिया गया हैं।[1]

११. वि. सं. १९२७ में स्वामी जी का मिर्जापुर में पं. गोविन्द भट्ट तथा पं. जयश्री से शास्त्रार्थ हुआ।

१२. १९२७ वि. में काशी में स्वामी जी पुनः पधारे और वहाँ के विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा परन्तु कोई समक्ष नहीं आया।

१३. १८७० ई. में अनूपशहर में स्वामी जी के पधारने पर लोगों ने चेष्टा की कि कृष्णानन्द को पुनः शास्त्रार्थ के हेतु तैयार करें, परन्तु वह नहीं आया।

---

१. देखिये इसी लेखक द्वारा सम्पादित काशी शास्त्रार्थ का सं. २०२६ वि. का संस्करण।

१४. अगस्त १८७० में श्री महाराज का डुमरांव में पं. दुर्गादत्त से शास्त्रार्थ हुआ। दुर्गादत्त शैव था। उसने ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद्[1] तथा 'त्र्यम्बकं यजामहे'[2] आदि यजुर्वेद के मन्त्रों से मूर्तिपूजा को वेदोक्त सिद्ध करना चाहा, परन्तु स्वामी जी ने इन मन्त्रों का वास्तविक अर्थ कर दिया। इस पर पं. दुर्गादत्त चुप हो गये। परन्तु श्रीमहाराज के परलोक गमन के पश्चात् १९४१ वि. में उसने 'दुर्गादत्तदिग्वजय' शीर्षक एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उक्त शास्त्रार्थ में अपने विजयी होने का मिथ्या दावा किया।

१५. भाद्रपद संवत् १९२९ में स्वामी जी का आरा में पं. रुद्रदत्त तथा पं. चन्द्रदत्त से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। पण्डितद्वय अपना पक्ष सिद्ध करने में असमर्थ रहे।

१६. पटना में स्वामी जी का पं. रामजीवन भट्ट तथा पं. राम अवतार से शास्त्रार्थ हुआ। दोनों पण्डितों में से कोई भी शुद्ध संस्कृत का उच्चारण करने में भी असमर्थ रहे।

१७. अप्रैल १८७३ ई. में स्वामी जी कलकत्ता पहुंचे। यहाँ आदि ब्रह्मसमाज के पं. हेमचन्द्र से चक्रवर्ती से उनका जातिव्यवस्था, मूर्तिपूजा तथा सांख्य के ईश्वरवाद पर विचार हुआ।

१८. कलकत्ता में ही स्वामी जी का संस्कृत कालेज, कलकत्ता के प्राचार्य पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न से बाबू गौरा चांद के घर पर शास्त्रार्थ हुआ। लगभग ४०० पुरुष वहाँ एकत्रित थे। शास्त्रार्थ का विषय ईश्वर और धर्म का स्वरूप था।

१९. कलकत्ते में ही एक शास्त्रार्थ हिन्दू पण्डितों के साथ बाबू ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय के घर पर हुआ था। इसका विवरण उपलब्ध नहीं होता।

---

१. यजुर्वेद ३१।११
२. ,, ३/६०

२०. हुगली में दि. ८ अप्रैल १८७३ के दिन भाटपाड़ा ग्राम के निवासी पं. ताराचरण तर्करत्न से स्वामी जी का प्रतिमापूजन की वैदिकता पर शास्त्रार्थ हुआ। पं. ताराचरण काशी शास्त्रार्थ में भी उपस्थित थे। इस शास्त्रार्थ का पूर्ण विवरण हुगली शास्त्रार्थ[1] या प्रतिमापूजनविचार के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

२१. २५ मई १८७३ को छपरा में स्वामी जी का पं. जगन्नाथ से शास्त्रार्थ हुआ। पं. जगन्नाथ ने इससे पूर्व स्वामीजी के सामने न आने का बहाना करते हुये कहा था कि वह नास्तिक है, अतः मैं उसका मुख देखना भी पाप समझता हूं। इस पर स्वामीजी ने कहा कि यदि वे मेरा मुख न देखना चाहें तो बीच में पर्दा डाल दिया जायगा, परन्तु शास्त्रार्थ अवश्य होगा। पं. जगन्नाथ स्वामीजी के समक्ष निरुत्तर हो गया।

२२. जून १८७३ में जब स्वामीजी आरा पहुंचे तो उसका पं. रुद्रदत्त से पुनः शास्त्रार्थ हुआ। 'प्रतिमा' शब्द की व्युत्पत्ति पर चर्चा चली। पं. रुद्रदत्त निरुत्तर हो गये।

२३. मार्गशीर्ष कृ. १३ संवत् १९३० को कानपुर में पं. गंगाधर से स्वामीजी का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ शास्त्रार्थ समाप्त होने के पूर्व ही पं. गंगाधर के समर्थकों ने हल्ला मचा कर सभा भंग कर दी।

२४. सन् १८७४ में जब स्वामीजी वृन्दावन पधारे तो उनकी पं. रंगाचार्य से शास्त्रार्थ होने की कुछ चर्चा चली, परन्तु पं. रंगाचार्य सम्मुख नहीं आये।

२५. जुलाई १८७४ में स्वामीजी प्रयाग पधारे। यहाँ पं. काशीनाथ शास्त्री जो म्योर कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे, महाराष्ट्र ईसाई पण्डित नीलकण्ठ

---

१. गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली से प्रकाशित।

शास्त्री के साथ स्वामीजी के पास आये। इस अवसर पर नीलकण्ठ शास्त्री से स्वामीजी का वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद की सत्ता पर विचार हुआ। स्वामीजी ने बाइबिल की विज्ञान विरुद्ध शिक्षाओं का भी खण्डन किया।

२६. जबलपुर में अक्टूबर १८७४ में स्वामीजी के पधारने पर उनकी पं. शंकर शास्त्री से शास्त्रार्थ की चर्चा हुई परन्तु शास्त्रीजी तत्पर नहीं हुये।

२७. बम्बई में वल्लभ सम्प्रदाय के पण्डित बेचर शास्त्री ने स्वामीजी से कतिपय प्रश्न किये। नियमपूर्वक शास्त्रार्थ नहीं हो पाया। विपक्षियों ने कोलाहल मचा कर सभा भंग कर दी। पं. गट्टूलाल से भी शास्त्रार्थ की चर्चा चली परन्तु शास्त्रार्थ हुआ नहीं।

२८. १८७४ ई. में ही सूरत नगर में पं. इच्छाशंकर शास्त्री ने स्वामीजी से कतिपय प्रश्न कर शास्त्रार्थ करने का उपक्रम किया, परन्तु स्वामीजी ने उन्हें शीघ्र ही निरुत्तर कर दिया।

२९. इसी वर्ष भड़ौंच में स्वामी जी का एक दक्षिणी ब्राह्मण पं. माधवराव त्र्यम्बकराव से शास्त्रार्थ हुआ। ऋग्वेद के मन्त्र से मूर्तिपूजा सिद्ध करने करने का दावा उक्त पण्डित पूरा नहीं कर सका।

३०. जनवरी १८७५ में स्वामी जी राजकोट गये। वहाँ पं. महीधर तथा पं. जीवनराम शास्त्री उनसे मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद पर शास्त्रार्थ करने के लिये आये। दोनों पण्डित निरुत्तर हो गये।

३१. १० मार्च १८७५ को बम्बई में स्वामी जी का अनेक पण्डितों से एक साथ शास्त्रार्थ कराने का आयोजन किया गया। इसमें पं. खेमजी बालजी जोशी, पं. इच्छाशंकर शुक्ल आदि ने कुछ व्याकरणविषयक प्रश्न पूछे, जिनका स्वामीजी ने योग्यतापूर्वक उत्तर दे दिया। बम्बई में ही पं. कमलनयनाचार्य से स्वामीजी का समारोहपूर्वक शास्त्रार्थ

करने का बृहद् आयोजन फ्रामजी कावसजी हाल में हुआ, परन्तु अनावश्यक वाद विवाद के अनन्तर कमलनयनाचार्य सभास्थल से उठ कर चले गये। पुनः उसी स्थान पर स्वामी जी का मूर्तिपूजा के खण्डन पर व्याख्यान हुआ। इसमें अनेक प्रतिष्ठित पुरुष विद्यमान थे।

३२. संवत् १९३२ वि. में स्वामी जी जब बड़ौदा गये तो पं. यज्ञेश्वर शास्त्री तथा पं. अप्पय शास्त्री से श्रीमहाराज का क्रमशः व्याकरण और न्याय पर शास्त्रार्थ हुआ। पण्डितद्वय परास्त हो गये।

३३. संवत् १९३३ वि. में श्रीमहाराज पुनः बम्बई पधारे। इस बार नवद्वीप निवासी पं. रामलाल ज्योतिषी से स्वामी जी का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। उक्त पण्डितजी मूर्तिपूजन को वैदिक सिद्ध करने में असमर्थ रहे। शास्त्रार्थ रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे समाप्त हुआ।

३४. मई १८७६ में स्वामीजी पुनः काशी पधारे। इस बार भी शास्त्रार्थ हेतु कोई पण्डित सामने नहीं आया।

३५. अगस्त १८७६ में जब श्रीमहाराज अयोध्या पधारे तो पण्डितों ने उनसे शास्त्रार्थ करने का विचार किया, परन्तु कोई सामने नहीं आया।

३६. संवत् १९३३ में जब स्वामी जी मुरादाबाद पधारे तो ईसाई पादरी डब्लू पार्कर से उसका शास्त्रार्थ हुआ। पादरी के साथ उन के सहयोगी श्री बेली तथा रायचन्द्र बोस (देशी ईसाई) थे। शास्त्रार्थ लिखित रूप में निरन्तर १५ दिन तक चलता रहा। इस शास्त्रार्थ का लिखित विवरण यदि उपलब्ध हो जाता तो वह बड़ी काम की चीज होती। उसमें स्वामी जी ने ईसाई सिद्धान्तों का खण्डन किया। अन्ततोगत्वा पादरी महाशय निरुत्तर हो गये।

३७. १९३३ वि. में ही बरेली में पं. अंगदशास्त्री तथा पं. लक्ष्मण शास्त्री स्वामी जी से शास्त्रार्थ हेतु सन्नद्ध हुये परन्तु उन्हें स्वामीजी ने निरुत्तर कर दिया।

३८. चांदापुर (जिला शाहजहाँपुर) में मुन्शी प्यारेलाल कायस्थ कबीर पन्थी ने सत्य धर्म की जिज्ञासा हेतु मेले का आयोजन किया। यह मेला १५ मार्च १८७७ से २२ मार्च १८७७ तक रहा। इसमें आर्य धर्म के प्रतिनिधि रूप में स्वामी दयानन्द तथा मुरादाबाद निवासी मुन्शी इन्द्रमणि सम्मिलि हुये। मौलवी मुहम्मद कासिम देवबन्द वाले तथा पादरी जे. टी. स्काट बरेली निवासी क्रमशः इस्लाम और ईसाई मतों के प्रतिनिधि रूप में इस धर्म चर्चा में आये। इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण सत्य धर्म विचार मेला चांदापुर शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक का उर्दू तथा अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ।

३९. २४ सितम्बर १८७७ को जालन्धर में मौलवी अहमद हसन के साथ आवागमन और चमत्कार पर शास्त्रार्थ हुआ। यह पं. लेखराम रचित श्रीमहाराज के उर्दू जीवन चरित्र में परिशिष्ट रूप में छपा। दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग में भी यह शास्त्रार्थ प्रकाशित हुआ।

४०. वि० सं० १९३४ में पंजाब के गुजरात नगर में जम्मू निवासी कतिपय पण्डित स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने हेतु आये परन्तु अपने उद्देश्य में असफल रहे।

४१. संवत् १९३४ में अमृतसर में जब स्वामीजी पधारे तो पण्डितों ने शास्त्रार्थ के लिये बहुत लम्बी चौड़ी चर्चा चलाई परन्तु केवल उद्दण्डता का प्रदर्शन होकर रह गया।

४२. उपर्युक्त संवत् १९३५ में ही रुड़की प्रवास काल में श्रीमहाराज का मौलवी मुहम्मद कासिम से शास्त्रार्थविषयक पत्र व्यवहार

और नियम निर्धारण का कार्य हुआ परन्तु मौलवीजी मैदान में नहीं आये।

४३. मेरठ में मौलवी अब्दुल्ला का स्वामीजी से शास्त्रार्थ विषयक पत्र व्यवहार हुआ। सनातन धर्म रक्षिणी सभा ने भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये पत्राचार किया परन्तु दोनों में से कोई पक्ष वास्तविक रूप से शास्त्रार्थ के लिये तैयार नहीं हुआ। यह घटना संवत् १९३५ की है।

४४. २८ नवम्बर १८७८ को अजमेर में पादरी ग्रे तथा पादरी डा० हजबैण्ड के साथ लिखित शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ थियोसोफिस्ट पत्र के जनवरी १८८० के अंक में प्रकाशित हुआ।

४५. मई १५७९ में मेरठ में देवबंद के मौलवी मुहम्मद कासिम ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये नियम निर्माण की लम्बीचौड़ी कार्यवाही की परन्तु सामने नहीं आये।

४६. बदायूँ में पं. रामप्रसाद ने दो दिन तक स्वामीजी से ईश्वर के निराकार होने तथा वेदों के पढ़ने का चातुर्वर्ण्य मात्र को अधिकार होने पर शास्त्रार्थ किया। स्वामीजी का मत पण्डित ने स्वीकार कर लिया।

४७. २५, २६, २७ अगस्त १८७९ तीन दिन तक बरेली नगर में पादरी जे. टी. स्काट से स्वामीजी का लिखित शास्त्रार्थ क्रमशः आवागमन, ईश्वर के देह धारण करने तथा ईश्वर तथा जीवों के पाप क्षमा करने विषयों पर हुआ। यह शास्त्रार्थ 'सत्यासत्यविवेक' शीर्षक से प्रकाशित भी हो चुका है।

४८. संवत १९३६ वि. में शाहजहाँपुर में स्वामीजी का पं अंगदराम शास्त्री से शास्त्रार्थविषयक विस्तृत पत्रव्यवहार हुआ। यहां पर

ही पं. लक्ष्मण शास्त्री मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आया परन्तु अपने पक्ष के समर्थन में कोई वेदमंत्र प्रस्तुत नहीं कर सका।

४९ १ दिसम्बर १८७९ को स्वामीजी के शिष्य पं. भीमसेन शर्मा के हस्ताक्षर से काशी में एक विज्ञापन प्रकाशित करा कर वितरित किया गया, जिसमें काशी के पण्डितों को शास्त्रार्थ हेतु आहूत किया गया। कोई विद्वान सामने नहीं आया। यह विज्ञापन संस्कृत भाषा में प्रकाशित हुआ।

५०. देहरादून में पौराणिकों तथा मुसलमानों ने शास्त्रार्थ हेतु स्वामीजी से वार्तालाप किया, परन्तु सम्मुख आने का साहस किसी को नहीं हुआ। यह घटना १८८० ई. की है।

५१. जून १८८१ ई, में ब्यावर में पादरी शूल ब्रेड तथा देशी ईसाई बिहारी-लाल स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये, परन्तु केवल वार्तालाप ही होकर रह गया।

५२. ९ जुलाई १८८१ के दिन मसूदा निवास के समय जैन साधु सिद्धकरण से स्वामीजी का लिखित शास्त्रार्थ हुआ। इसका विवरण दयानन्द दिग्विजयार्क के भाग १ में प्रकाशित हुआ है।

५३. १८८२ ई० की जनवरी में स्वामीजी ने बम्बई में पादरी जोजेफ कुक को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया, परन्तु पादरी पूना चला गया।

५४. उदयपुर में ११ सितम्बर १८८२ से १७ सितम्बर १८८२ तक स्वामीजी का मुसलमान जज मौलवी अब्दुलरहमान से विभिन्न सात प्रश्नों पर शास्त्रार्थ हुआ। यह प्रश्नोत्तर रूपी शास्त्रार्थ भी स्वामीजी के जीवन में प्रकाशित हो चुका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी अपने प्रचार काल में जिस-जिस स्थान पर गये हैं, वहां वहां उनसे शास्त्रार्थ करने के लिये पौराणिक

विद्वान् तैयार रहे हैं। धर्म के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित करने के लिये शास्त्रार्थ एक प्रभावशाली साधन है। स्वामीजी के जीवनचरित में एक स्थान पर लिखा है कि जिस दिन कोई बड़ा शास्त्रार्थ होने को होता उस दिन स्वामीजी तीन बजे रात्रि में उठते और ताजे पानी के साथ ऋतु अनुसार सौंफ आदि फांक कर शौच को जाते और स्नान करके ध्यानावस्थित हो जाते और ६। बजे प्रातःकाल तक ध्यान में मग्न रहते। अन्य दिनों के अपेक्षा उस दिन अधिक समय तक ध्यान करते थे। वस्तुतः परम पिता का अधिक काल तक ध्यान और चिंतन ही स्वामीजी के लिये शास्त्रार्थ समर में सम्बल बनता था। स्वामीजी के निम्न शास्त्रार्थ प्रकाशित हो चुके हैं—१ काशी शास्त्रार्थ २ सत्य धर्म विचार ३ प्रतिमा पूजन विचार ४ सत्यासत्य विवेक ५ भ्रान्ति निवारण। (पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के वेदभाष्यविषयक प्रश्नों के उत्तर) ६ भ्रमोच्छेदन—(राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के वेद ब्राह्मण संज्ञा विषयक प्रश्नों का उत्तर)

---

२ ऋषि दयानन्द के प्रिय सिद्धान्त वाक्य—

निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः—भर्तृहरि।
सुलभाः पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता,च दुर्लभः॥

—विदुर

३. पं. भीमसेन शर्मा (इटावा निवासी)

ऋषि दयानन्द के शिष्य पं. भीमसेन शर्मा का जन्म कार्तिक शुक्ला ५ सं० १९११ वि० को लालपुर जिला मैनपुरी में पं० नेकराम के घर हुआ। बाल्यावस्था से ही विद्याध्ययन की ओर इनकी विशेष रुचि थी। प्रारम्भ में इन्होंने उस काल की प्रथा के अनुसार कुछ उर्दू पढ़ी तत् पश्चात् यज्ञोपवीत के अनन्तर स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित फर्रुखाबाद की संस्कृत पाठशाला में ये संस्कृत पढ़ने लगे। यहां लगभग ४ वर्ष तक ये अष्टाध्यायी आदि संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थ पढ़ते रहे पुनः स्वामी दयानन्द के निकट काशी में रहकर उन्होंने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया तथा स्वामीजी के पास ही ग्रन्थ लेखक के रूप में कार्य करने लगे। स्वामीजी के साथ रहते तथा उनके ग्रन्थों का लेखन कार्य करते पं० भीमसेन का वैदिक वाङ्मय में गहरा प्रवेश हो गया। जब स्वामीजी ने वैदिक यंत्रालय की स्थापना की और उन्हें अपने ग्रन्थों के शोधन और प्रकाशन के लिये सहायक की आवश्यकता हुई तो पं० भीमसेन के साथ-साथ पं० ज्वालादत्त, पं० दिनेशराम आदि अन्य पण्डित भी कार्य करने लगे। पं० भीमसेन का कार्य बहुत अधिक संतोषजनक नहीं होता था, अतः स्वामीजी अपने पत्रों में इन्हें निरन्तर उपालम्भ देते रहते थे। स्वामीजी के संस्कृत वेदभाष्य का हिन्दी भाषान्तर भी इनके ही जिम्मे था।

महर्षि के स्वर्गवास के पश्चात् ये प्रयाग में रहकर वैदिक यन्त्रालय का कार्य देखने लगे और संवत् १९४२ वि. में आर्य सिद्धान्त नामक मासिक पत्र का भी प्रकाशन करने लगे। इस मासिक में आर्य सिद्धान्तविषयक

उच्चकोटि के लेख होते थे कालान्तर में इन्होंने सरस्वती यन्त्रालय नामक अपना प्रेस स्थापित किया और उसमें आर्यसिद्धान्त के अतिरिक्त गीता, मनुस्मृति, उपनिषद्, गृह्य सूत्र आदि शास्त्रीय ग्रन्थों के संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रकाशित किये। 'आर्यसिद्धान्त' के माध्यम से ही इनका लिखित शास्त्रार्थ का कार्यक्रम चलता रहता था। अनेक सनातनी विद्वानों द्वारा लिखित आर्यसमाज विरोधी ग्रन्थों का योग्यतापूर्वक उत्तर लिखना पं. भीमसेन की विशेषता थी। ऐसे कतिपय लिखित शास्त्रार्थों में निम्न उल्लेखनीय हैं—पं. राममोहन शर्मा लिखित महामोह विद्रावण (ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका के वेद संज्ञा विचार प्रकरण का खण्डन) का उत्तर, हरिशंकर शास्त्री के 'सद्धर्मदूषणोद्धार' का उत्तर, पं. आत्माराम (आनन्द विजय) नामक जैन साधु की 'अज्ञान तिमिर भास्कर' का उत्तर, साधुसिंह लिखित 'सत्यार्थ विवेक' का खण्डन, पं. यमुनादास लिखित 'महताब दिवाकर' का खण्डन, पादरी टी. विलियम्स के नियोगविषयक आक्षेपों का खण्डन।

इसके अतिरिक्त पं. भीमसेन ने फीरोजाबाद में जैन विद्वानों से भी शास्त्रार्थ किया जो 'शास्त्रार्थ फीरोजाबाद' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। कालान्तर में मृतक श्राद्ध विषय में मतभेद हो जाने तथा चूरू के एक सेठ माधवप्रसाद खेमका द्वारा कराये गये यज्ञ में अवैदिक कर्म काण्ड कराने के कारण पं. भीमसेन को आर्यसमाज का परित्याग कर देना पड़ा। सनातनी खेमे में जाकर ये 'ब्राह्मणसर्वस्व' नामक पत्रिका निकाल कर आर्यसमाज का खण्डन करने लगे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में पं. सत्यव्रत सामश्रमी के निधन के पश्चात् वेद व्याख्याता पद पर भी इनकी नियुक्ति हुई थी। चैत्र कृ, १२ सं, १९७४ को आप परलोकवासी हुए।

———

४. पं० लेखराम आर्यपथिक

शहीदे आजम आर्यपथिक लेखराम का जन्म चैत्र ८ सं० १९१५ वि० को पंजाब के सय्यदपुर ग्राम में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू, फारसी की हुई। पुनः पुलिस विभाग में कर्मचारी पद पर नियुक्त हुये। इसी बीच आपको आर्यसमाज के सिद्धान्तों का परिचय मुन्शी अलखधारी के ग्रन्थों से हुआ। धीरे धीरे आप आर्यसमाज के रंग में रंगते ही चले गये। पेशावर आर्यसमाज के एक स्तम्भ बने। सरकारी सेवा को तिलाञ्जलि देकर सर्वात्मना आर्यसमाज के कार्य हेतु अपने आपको समर्पित कर दिया। आर्यसमाज पेशावर के तत्त्वावधान में 'धर्मोपदेश' नामक एक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकालने लगे। पुनः आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक बन कर प्रचार कार्य करने लगे। अपने जीवन में सैकड़ों शास्त्रार्थ किये। कुछ महत्त्व पूर्ण शास्त्रार्थों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

१. जब पं. लेखराम पुलिस कर्मचारी थे, उसी समय इनके सुपरिन्टेन्डेन्ट को उनके आर्यसमाजी होने का पता चल गया। तब वह प्रायः अपने डिप्टी रीडर मुं० वजीर अली के साथ पंण्डितजी के शास्त्रार्थ कराया करता था और स्वयं इन रोचक संवादों को सुनता था।

२. ८ फरवरी १८८२ को आपने पादरी एम० बेरी से इंजील के ईश्वरीय ज्ञान होने तथा मुक्ति हेतु ईसा पर ईमान लाने की आवश्यकता पर शास्त्रार्थ के लिये पत्र द्वारा आग्रह किया। पादरी ने गोल मोल उत्तर देकर अपना पीछा छुड़ाया।

३. मुसलमानी मत के अन्तर्गत कादियाँ के मिर्जा गुलाम अहमद को उनके घर पर जाकर ही शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। १ अक्टूबर १८८४ को

शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिया गया। मिर्जाजी शास्त्रार्थ के लिये तैयार नहीं हुये। मिर्जा के ग्रन्थ बुराहीन अहमदिया के उत्तर में 'तकजीव बुराहीन अहमदिया' लिखकर कर जुलाई १८८७ में प्रकाशित की। मिर्जा के द्वारा आर्यसमाज के खण्डन में रचित 'सुरमा ए चश्म आरिया' के उत्तर में 'नुस्खाएखब्त अहमदिया' लिखा। कादियाँ में पण्डितजी स्वयं २ मास तक रहे तथा मिर्जा के इल्हामी कोठे पर जा जाकर उसकी नाक में दम करते रहे तथा इस ग्राम में आर्यसमाज स्थापित किया।

४. ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र की सामग्री का संकलन करते हुये जब पं. लेखराम राजस्थान में आये तो नसीराबाद में उनका मुसलमानों से शास्त्रार्थ छिड़ गया। नगर कोतवाल, जो एक शराबी कायस्थ था, ने शास्त्रार्थ बीच में ही बंद करवा दिया। उसी रात पक्षाघात के आक्रमण के कारण उस कोतवाल की दूसरे दिन मृत्यु हो गई। सर्व साधारण में यह बात प्रसिद्ध हो गई कि उक्त कोतवाल को पण्डितजी का शास्त्रार्थ बंद करने का यह फल मिला। यद्यपि इसमें सत्यता किञ्चित् मात्र भी नहीं थी, तथापि लोक मत ऐसा ही बन गया।

५. नकोदर आर्यसमाज वार्षिकोत्सव के अवसर पर एक साधु और एक पौराणिक पण्डित से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें दोनों प्रतिपक्षी निरुत्तर हो गये।

६. मिर्जापुर में मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थ की प्रारम्भिक तैयारी हुई, परन्तु शास्त्रार्थ नहीं हो सका।

७. हैदराबाद सिंध में मौलवी सैयद मुहम्मदअली शाह के साथ पैगम्बर मुहम्मद के मौजिजों (करामात-चमत्कार) पर शास्त्रार्थ किया। मौलवी उत्तर नहीं दे सके। पुन: कई अन्य मौलवियों से पत्र व्यवहार हुआ। पण्डित लेखराम ने मौजिजों का खण्डन किया।

८. नाहन आर्यसमाज के उत्सव पर सनातनी साधु केशवानन्द से शास्त्रार्थ किया।

९. बूंदी में जब स्वामी नित्यानन्द तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द का वहाँ के राजपण्डितों से ब्राह्मण ग्रन्थों के वेदत्त्व पर शास्त्रार्थ हुआ तो पं. लेखराम आर्य संन्यासियों की सहायता करने के लिये बूंदी पहुँचे, परन्तु उससे पूर्व ही शास्त्रार्थ समाप्त हो चुका था, तथा संन्यासीद्वय को सम्प्रदाय पक्षपात के कारण मतान्ध राजा ने अपने राज्य से निष्कासित कर दिया था। बूंदी से पण्डितजी जहाजपुर (मेवाड़ राज्य) लौटे तथा वहाँ व्याख्यान में इस्लाम की कड़ी समालोचना करने लगे, इस पर सेना के एक मुसलमान सूबेदार ने कटाक्ष करते हुये कहा—"ऐसे ही तीसमार खां थे तो बूंदी से भाग कर क्यों आये ?" हाजिर जवाब पं, लेखराम ने उत्तर दिया—"विपक्षी शास्त्रार्थ से भाग गया तो हम लौट आये, कुछ आं हजरत (पैगम्बर साहब) की तरह हिजरत कर के तो नहीं आये।" इस तीखे उत्तर को सुनकर सूबेदार के क्रोध का पारावार नहीं रहा, उसका हाथ तलवार की म्यान पर गया। इसे देखकर लेखराम ने गरजते हुये कहा—"मुझे तलवार की धमकी देता है, अगर है पठान तो तलवार निकाल कर मजा देख।" शेर की ललकार सुन कर सूबेदार चुप्पी साध गया।

१०. अजमेर में सुप्रसिद्ध हकीम पीरजी से थोड़ा मुबाहिसा हुआ। पीरजी पण्डितजी की सदा प्रशंसा करते थे।

११. २२ जुलाई १८९२ को सीवी (बिलोचिस्तान) में पौराणिक पं. प्रीतमदेव शर्मा के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये स्वामी नित्यानन्द के साथ पहुंचे। पं. प्रीतमदेव शास्त्रार्थ स्थगित कर चले गये।

१२. आर्यसमाज बन्नू के वार्षिकोत्सव पर जब पं. लेखराज पहुंचे तो वहां वहां की सनातनधर्म सभा के मन्त्री ने शास्त्रार्थ हेतु पत्र व्यवहार किया, परन्तु शास्त्रार्थ करने कोई नहीं आया।

१३. दीनानगर में मुसलमानों ने शात्रार्थ के लिये चर्चा चलाई, परन्तु मौलवी अकबर अली तथा मौलवी चिरागुद्दीन सामने नहीं आये।

१४. धर्मशाला में सनातनी संन्यासी स्वामी ब्रह्मानन्द भारती नियोग की आड़ लेकर आर्यसमाज के प्रवर्तक को बहुत कुछ बुरा भला कहता था। पं. लेखराम ने तुरन्त वहाँ पहुँच कर शास्त्रार्थ के लिये उक्त संन्यासी को आहूत किया। शास्त्रार्थ हेतु संन्यासी नहीं आया।

१५. १२ दिसम्बर १८९५ को रोपड़ में मूर्तिपूजा विषय पर पौराणिकों से शास्त्रार्थ किया।

१६. २७ फरवरी १८९६ को डेरा गाजीखां में एक पादरी से शास्त्रार्थ किया।

१७. भागोवाला (जिला गुरदासपुर) के आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर एक मुलसमान ग्रेजुऐट से रात्रि के समय शास्त्रार्थ हुआ। लगभग अढ़ाई हजार लोग उपस्थित थे। शास्त्रार्थ का विषय नियोग या मुता (इस्लामी समाज में नियोग) था। प्रतिपक्षी शीघ्र ही निग्रह स्थान में आ गया।

६ मार्च १८९७ को पण्डितजी शहीद हुये।

---

९. स्वामी नित्यानन्द ब्रह्मचारी

ऋषि दयानन्द के पश्चात् वाणी तथा लेखन द्वारा आर्यसमाज की सर्वाधिक सेवा करने वाले महापुरुषों में स्वामी नित्यानन्द ब्रह्मचारी का नाम सर्वोपरि है। भाद्रपद शुक्ला १४ सं. १९१७ वि. को राजस्थान के जालोर नगर में श्रीमाली ब्राह्मण पं० पुरुषोत्तमजी के घर पर उनका जन्म हुआ। जन्म नाम था रामदत्त। बालक की माता नाम था कृष्णाबाई। मारवाड़ के श्रीमाली ब्राह्मणों में वैदिक कर्मकाण्ड और वेदाभ्यास का प्रचलन परम्परागत रहा है। तदनुसार बालक रामदत्त ने अपने नाना के संसर्ग में रह कर यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राध्याय और पुरुषसूक्त का अभ्यास किया।

किशोर अवस्था में ही विद्या प्राप्ति के लिये आपने गृह त्याग कर देश भ्रमण प्रारम्भ किया। काशी में आपका परिचय स्वामी दयानन्द के शिष्य स्वामी गोपालगिरि से हुआ। स्वामी नित्यानन्द अब संन्यास की दीक्षा लेकर अध्ययन हेतु बरेली पहुँचे। यहाँ एक आर्यसामाजिक पण्डित यज्ञदत्त से वेदान्त पढ़ने लगे। इन्हीं पण्डितजी की कृपा से ब्रह्मचारी जी को स्वामी दयानन्द कृत 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' तथा 'सत्यार्थप्रकाश' आदि ग्रन्थ पढ़ने के लिये मिले। धीरे धीरे आर्यसमाज में स्वामी नित्यानन्दजी की ख्याति बढ़ने लगी। भ्रमण काल में एकबार आपका स्वामी विश्वेश्वरानन्द नामक एक अन्य संन्यासी से परिचय हुआ। दोनों संन्यासी एक दूसरे से प्रभावित हुये। इन दोनों का यह पारस्परिक परिचय सुदृढ़ मैत्री के रूप में परिवर्तित हो गया। आर्यसमाज के प्रचार को प्रगति प्रदान करने में इस संन्यासी युगल ने जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, वह चिरस्थायी रहेगा।

अब संन्यासीद्वय के शास्त्रार्थ प्रसंगों पर लिखा जाता है। इन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ किये जिनमें नरसिंहगढ़, येवला

(नासिक) तथा बून्दी के शास्त्रार्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। शास्त्रार्थ नरसिंहगढ़ वहाँ के राजपण्डितों से नरसिंहगढ़ नरेश की अध्यक्षता में हुआ था। इस शास्त्रार्थ का विवरण १५ अक्टूबर १८८८ को पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। शास्त्रार्थ की तिथि श्रावण शुक्ला ५, १९४५ वि. थी। बून्दी नरेश रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अतः उन्होंने अपनी शासकोचित तटस्थता तथा सम्प्रदाय निरपेक्षता को भुलाकर केवल पौराणिक पण्डितों का ही पक्ष नहीं लिया, अपितु शास्त्रार्थ के तुरन्त पश्चात् दोनों संन्यासियों को अपने राज्य से भी निर्वासित कर दिया। उस समय के पत्रों में बून्दी नरेश की इस पक्ष-पात पूर्ण कार्यवाही की कटु आलोचना की गई थी।

शाहपुरा के आर्य नरेश स्वर्गीय नाहरसिंहजी वर्मा ने बून्दी शास्त्रार्थ को प्रकाशित करने की इच्छा व्यक्त की थी, परन्तु इटावा वाले पं. भीमसेन स्वामी नित्यानन्द से सहज द्वेष रखते थे, अतः उन्होंने शास्त्रार्थ को प्रकाशित करने में अपनी असहमति व्यक्त की। तब शाहपुराधीश ने शास्त्रार्थ की पाण्डुलिपि लाहौर में पं० गुरुदत्त के पास भेजी। मुनिवर गुरुदत्त ने अपनी सम्मति प्रदान करते हुये लिखा कि महर्षि के पश्चात् ऐसा महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ आर्यसमाज ने कहीं नहीं किया है अतः इसे अविलम्ब प्रकाशित किया जाय। तदनुसार आर्यसमाज शाहपुरा द्वारा यह शास्त्रार्थ सं० १९४६ में वैदिक यंत्रालय, प्रयाग द्वारा मुद्रित करा कर प्रकाशित किया गया। इसका द्वितीय संशोधित संस्करण आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान द्वारा पं० ब्रह्मानन्दजी त्रिपाठी से सम्पादित करा कर संवत् २०२३ वि० में पुनः प्रकाशित किया गया। बून्दी शास्त्रार्थ का विषय ब्राह्मण भाग का वेद होना या न होना था। दोनों पक्षों के द्वारा संस्कृत माध्यम से लिखे गये पत्रों के आदान प्रदान द्वारा शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ। पौराणिक पण्डितों के प्रतिनिधि पं० गंगासहाय, नवनन्द शर्मा, व्यास हरिदास तथा श्रीनिवास ताताचार्य थे। शास्त्रार्थ के अन्त में यह स्पष्ट हो गया कि पौराणिक पण्डित अपने मत को सिद्ध करने असमर्थ रहे हैं।

८ जनवरी १९१४ के दिन स्वामी नित्यानन्द ब्रह्मचारी बम्बई में दिवंगत

हुये। उन्होंने पुरुषार्थप्रकाश तथा सनातनधर्म प्रकाश आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। होश्यारपुर में विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की स्थापना उनके अन्यतम सहयोगी और मित्र स्वामी विश्वेश्वरानन्द द्वारा हुई थी। इसके द्वारा वैदिक और संस्कृत शोध विषयक अद्वितीय कार्य हुआ है।

---

१२० मौलवियों से आर्यसमाजी पण्डितों का शास्त्रार्थ--

आर्यसमाज नगीना (जिला बिजनौर) तथा अहले इस्लाम के मध्य इल्हाम (ईश्वरीय ज्ञान) पर शास्त्रार्थ में मुसलमानों की ओर से १२० मौलवी थे और आर्यसमाज की ओर से मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी, पं० भगवानदीनजी मिश्र--प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त, स्वामी योगेन्द्रपाल, स्वामी दर्शनानन्द, मुन्शी गिरधारीसिंह तथा पं० मुरारीलाल शर्मा आदि आर्य विद्वान् थे। मास्टरजी ने ७० प्रश्न इल्हाम सम्बन्धी पूछे जिनमें से केवल २२ प्रश्नों का उत्तर मौलवी सनाउल्लाह दे पाये, मुसलमानों की ओर से ३ प्रश्न वेदों पर किये गये, जिनका विस्तृत उत्तर आर्य विद्वानों ने दिया।

—आर्यावर्त रांची (२५ जून व ७ जुलाई १९०४)

६. शास्त्रार्थ महारथी पं. गणपति शर्मा

राजस्थान के चूरू नगर में सं. १९३० वि. में पं. भानीरामजी वैद्य नामक पाराशर गोत्रीय पारीक ब्राह्मण के घर पं. गणपति शर्मा का जन्म हुआ। इनका प्रारम्भिक अध्ययन चूरू में हुआ। काव्य और व्याकरण में आपने विशिष्टता प्राप्त की। राजस्थान में वैदिक धर्म का प्रचार महर्षि दयानन्द के समकालीन रामगढ़ शेखावटी निवासी महात्मा कालूरामजी योगी के उपदेशों से हुआ। पं. गणपतिजी भी उक्त महात्मा के उपदेश से ही आर्यसमाजी बने। कतिपय वर्षों तक आपने कानपुर तथा काशी में रहकर अध्ययन किया। पुनः आर्यसमाज के प्रचारक्षेत्र में अवतीर्ण हुये।

गणपति शर्मा अपने युग के उच्चकोटि के वाग्मी तथा शास्त्रार्थ महारथी थे। जिस युग में ध्वनिविस्तारक यंत्रों का प्रयोग नहीं होता था, उस समय १०-१५ हजार श्रोताओं के समूह में लगभग ५ घण्टों तक ओजस्विनी भाषा में धाराप्रवाह भाषण देना पण्डितजी का ही काम था। जिस समय अन्य विद्वानों के व्याख्यान सुनते सुनते जनता ऊब जाती थी उस समय पं. गणपतिजी के व्याख्यान की घोषणा सुनते ही जनता में उत्साह का संचार होता था तथा वह घण्टों उत्साहपूर्वक बैठकर उनका व्याख्यान सुनती रहती थी।

इस प्रकार शास्त्रार्थ कला में भी उन्हें निपुणता प्राप्त थी। उनकी शास्त्रार्थपद्धति में विपक्षी पर कटूक्तिवर्षण, असद् व्यंग्य था कटाक्ष का प्रयोग विहित नहीं था। यही कारण है कि विधर्मी प्रतिपक्षी भी उनके सौजन्य, सद् व्यवहार तथा सच्चे आर्यत्व से प्रभावित होकर उनसे मैत्री

सम्बन्ध, स्थापित कर लेता था। यहाँ उनके कतिपय शास्त्रार्थों का उल्लेख किया जाता है—

१. एक बार गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव पर रुड़की के पादरी जे. वी. फ्रेंक से पण्डितजी का शास्त्रार्थ हुआ। यद्यपि पादरी अपने पक्ष का समर्थन नहीं कर सके परन्तु वे पण्डितजी के मधुर भाषण, सद् व्यवहार और पाण्डित्य से इतने प्रभावित हुये कि आजीवन उनके मित्र बने रहे।

२. एक बार पण्डितजी काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में विराज रहे थे। दैवयोग से काशी का असाधारण संस्कृत भाषण पटु पादरी जानसन वहीं जा पहुँचा। पादरी अपने स्वभावानुसार काश्मीर देशवासी पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारने लगा। जब कोई पण्डित उसके सामने आने का साहस नहीं कर सका तो पादरी का साहस और भी बढ़ गया। वह काश्मीर नरेश से आग्रह करने लगा कि या तो पण्डितों से मेरा शास्त्रार्थ कराइये अथवा मुझे विजयपत्र प्रदान कीजिये। महाराजा बड़े धर्म संकट में पड़े इसी बीच उन्हें ज्ञात हुआ कि पं. गणपति शर्मा, जो आर्यसमाज के प्रसिद्ध वक्ता एवं शास्त्रार्थ महारथी हैं, श्रीनगर आये हुये हैं। यद्यपि राजा कट्टर सनातनी थे, परन्तु उन्होंने पण्डितजी को आग्रहपूर्वक बुला कर जानसन से शास्त्रार्थ करने का निवेदन किया। जानसन पहले तो पं. गणपति का नाम सुनते ही घबराया। उसने कहा कि मेरा शास्त्रार्थ तो काश्मीरनिवासी पण्डितों से ही होना है, प्रवास में आये पं. गणपति से नहीं। परन्तु उसकी दाल नहीं गल सकी। फिर तो पण्डितजी ने उसे ऐसा छकाया कि उसकी सिट्टी गुम हो गई। वह घबरा कर संस्कृत बोलने के स्थान में हिन्दी में बोलने लगा। पराजित होकर विजयपत्र के स्थान में विशुद्ध पराजय पत्र लेकर लौटा। काश्मीर नरेश ने अपने देश की लाज बची देखकर पण्डितजी का

सम्मान किया तथा उन्हें पुनः काश्मीर आने का आग्रह करते हुये विदा किया।

३. पं. गणपति शर्मा की हार्दिक इच्छा थी कि वे एक बार सनातन धर्म के महाविद्वान् महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री से शास्त्रार्थ करें। अतः वे स्वामी दयानन्द के विद्वान् शिष्य पं. ज्वालादत्त शर्मा को साथ लेकर काशी जा पहुँचे। वहाँ जाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि शिवकुमारजी अपने गाँव गये हुये हैं। आर्यसमाज के पण्डितद्वय शिवकुमारजी के ग्राम में जा पहुँचे और उनसे अपनी इच्छा अभिव्यक्त की। पं. शिवकुमारजी ने मूर्तिपूजा तथा श्राद्ध आदि पौराणिक विवादास्पद विषयों के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर शास्त्रार्थ करने का मत व्यक्त किया। फलतः शास्त्रार्थ तो नहीं हुआ परन्तु पं. शिवकुमार शास्त्री पर आर्यसमाज के दिग्विजयी विद्वान् के वैदुष्य का सिक्का जम गया।

४. एक बार रोहतक जिला के खाँड़ा ग्राम में सनातन धर्मी जाटों ने मनचाही दक्षिणा देकर शिवकुमार शास्त्री को यह सिद्ध करने के लिये बुलाया कि जाटों को यज्ञोपवीत देना शास्त्र विरुद्ध है। इधर आर्यसमाजियों ने भी पं. गणपति को आमंत्रित किया। गणपति शर्मा को जाटों को यज्ञोपवीत देने का औचित्य सिद्ध करना था। पं. गणपति को सामने देख कर शिवकुमारजी को शास्त्रार्थ समर में उतरने का ही साहस नहीं हुआ। वे ८०० रु० की अग्रिम प्राप्त दक्षिणा को लौटा कर पुनः काशी चले गये।

५. कोटा (राजस्थान) में दि० २५ सितम्बर १९०४ को रामपुरा बाजार में सेठ कंवरलाल के नोहरे की विशाल छत पर (आश्विन कृष्णा प्रतिपदा सं० १९६१ वि० के दिन) आर्यसमाज तथा सनातन धर्म के बीच शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाज के मुख्य प्रवक्ता पं० गणपति शर्मा तथा पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ थे। कोटा राज्य के

दीवान चौबे रघुनाथदास वैष्णव मध्यस्थ बनाये गये। पं० गणपति की युक्तियों का समाधान करना प्रतिपक्षी पण्डित आत्मानन्द के लिये संभव नहीं हो सका अतः वे "बोल सनातन धर्म की जय" कहकर सभा से उठकर चले गये। इस प्रकार इस शास्त्रार्थ में सनातन धर्म को विशुद्ध पराजय प्राप्त हुई।

६. झालावाड़ (राजस्थान) में दि० १४ जनवरी १९०६ तदनुसार माघ कृष्णा ४, सं० १९६२ वि० को झालावाड़ नरेश के नाना महाराज बलभद्रसिंह की अध्यक्षता में आर्यसमाज और सनातनी विचारधारा के लोगों ने शास्त्रार्थ कराने का निश्चय किया। आर्यसमाज के प्रवक्ता पं० गणपति शर्मा थे। विपक्ष में पं० जयदेव झा मीमांसाचार्य ने अपना पूर्वपक्ष उपस्थित किया। पं० गणपति ने उनकी युक्तियों का अविलम्ब समाधान कर दिया। अब निग्रह स्थान में पहुँचे हुये पं० जयदेव ने कहा, "आप यह न समझें कि मैं हार गया हूँ। कल पुनः शास्त्रार्थ होगा और उसमें पं. गणपति जो कुछ कहेंगे मैं उसका प्रत्यक्षर खण्डन करूँगा। इस पर प्रत्युत्पन्नमति पं० गणपति का उत्तर कमाल का था। उन्होंने कहा—पं० जयदेवजी ने एक बड़ी विचित्र प्रतिज्ञा कर ली है कि मेरी बात का प्रत्यक्षर खण्डन करेंगे। मान लीजिये किसी वार्ता प्रसंग में मैंने कह दिया—पं० जयदेवजी अपने माता पिता की सन्तान हैं। क्या इसका प्रत्यक्षर खण्डन करते हुये पं० जयदेव यह कहेंगे कि नहीं, मैं अपने माता पिता की संतान नहीं हूँ।" श्रोता मण्डली इस बात को सुन कर अट्टहास कर उठी। विपक्षी पण्डितजी की स्थिति इतनी दयनीय बन गई कि वे छः महीने तक अपने घर से बाहर निकल कर किसी को मुँह भी नहीं दिखा सके।

७. इटावानिवासी पं० भीमसेनजी शर्मा से गणपति शर्मा का एक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ पुनः झालावाड़ में हुआ। इसका पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं हुआ।

८. पं. गणपति ने बिहार के सुप्रसिद्ध नास्तिक विद्वान् पं० रामावतार शर्मा को शास्त्रार्थ के लिये गुरुकुल ज्वालापुर के वार्षिकोत्सव पर ललकारा, परन्तु उत्सव के पूर्व ही पं० गणपति का स्वर्गवास हो जाने के कारण यह शास्त्रार्थ नहीं हो सका।

९. इसी प्रकार स्वामी दर्शनानन्द से पं० गणपति शर्मा का वृक्षों में जीव विषय पर प्रसिद्ध शास्त्रार्थ दि० ८-४-१९१२ को महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव पर हुआ। इसका आँखों देखा वृत्तान्त पर पं० पद्मसिंह शर्मा ने महाविद्यालय के मुख पत्र 'भारतोदय' में प्रकाशित किया था।

१०. स्वामी दर्शनानन्द का जब अजमेर में जैन विद्वानों से शास्त्रार्थ हो रहा था, उस समय स्वामीजी ने अपने सहयोग हेतु पं० गणपति शर्मा का स्मरण किया, परन्तु उसी समय दि. २७ जून १९१५ तदनुसार प्रथम आषाढ़ शुक्ला १३ सं. १९६९ को केवल ३९ वर्ष की आयु में ही इस ओजस्वी वक्ता तथा शास्त्रार्थ कला के अद्वितीय महारथी का असामयिक स्वर्गवास हो गया।

न्यायदर्शन के अनुसार शास्त्रार्थ के रूप

वाद—प्रमाण तथा तर्कयुक्त पञ्चावयव सहित वादी और प्रतिवादी के परस्पर प्रश्नोत्तर को वाद कहते हैं। शास्त्रार्थ का यही सर्वोत्तम प्रकार है।

जल्प—छल जाति और निग्रहस्थान की सहायता से केवल जय प्राप्ति हेतु जो विचार होता है उसे जल्प कहते हैं।

वितण्डा—अपने सिद्धान्त की स्थापना न कर केवल प्रतिपक्ष के खण्डन में तत्पर रहना वितण्डा कहलाता है।

७. तार्किकशिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

आर्यसमाज के अद्वितीय दार्शनिक विद्वान् तर्कशिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द का जन्म माघ कृष्णा दशमी सं. १९१८ वि. के दिन पंजाब देश के लुधियाना जिलान्तर्गत जगरांवा ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम पं. रामप्रताप शर्मा था। इनका बाल्यकाल का नाम कृपाराम था। कृपाराम ने प्रारम्भिक युवावस्था में व्यापार व्यवसाय में रुचि दिखलाई परन्तु शीघ्र ही उन पर वैराग्य का रंग चढ़ गया। इन्होंने स्वामी दयानन्द के साक्षात् उपदेश सुने थे। आर्यसमाज की लगन लग जाने पर पं. कृपाराम ने काशी को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। यहाँ १० सितम्बर १८८९ को आपने तिमिर-नाशक प्रेस की स्थापना की तथा व्याकरण, दर्शन तथा अन्य शास्त्रों के ग्रन्थों को कम मूल्य में प्रकाशित कर बेचते रहे। काशी में रह कर पं. कृपाराम ने अपने समय के अद्वितीय विद्वान् पं. हरनाथ शास्त्री (स्वामी मनीषानन्द) से दर्शनों का विशद अध्ययन किया।

अब पं. कृपाराम स्वामी दर्शनानन्द के रूप में आर्यसमाज के प्रचार कार्य में समग्रतः अवतीर्ण हुये। ग्रन्थ लेखन, शास्त्रार्थ तथा गुरुकुल स्थापन स्वामी दर्शनानन्द की त्रिविध प्रवृत्तियों ने वैदिक धर्म के व्यापक प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। उनके द्वारा किये गये कतिपय शास्त्रार्थों का विवरण इस प्रकार है—

१. महामहोपाध्याय पं. शिवकुमार शास्त्री से शास्त्रार्थ—काशी के विद्वानों में महामहोपाध्याय पं. शिवकुमार शास्त्री सर्वोपरि समझे जाते थे।

एक बार सनातन धर्मसभा के उत्सव पर शास्त्रीजी ने कहा—"स्वामी दयानन्द ने 'देव' शब्द का अर्थ विद्वान् किया है यह ठीक नहीं है। देवता और ही होते हैं।" श्रोतृमण्डल में स्वामी दर्शनानन्द विद्यमान थे। आपने तुरन्त शास्त्रीजी को शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया और तिथि निश्चित कर ली। इसके पश्चात् एक दिन रात्रि के समय 'देव' शब्द के लिए विविध ग्रन्थों से प्रमाण ढूँढ रहे थे कि अकस्मात् इनके गुरु पं. हरनाथ शास्त्री उधर आ निकले। उन्होंने कहा कि 'देव' शब्द का 'विद्वान्' अर्थ एक नहीं १५० स्थानों पर बता सकता हूँ, यह कह कर उन्होंने स्वामीजी को सब प्रमाण नोट करा दिये। फलतः स्वामीजी की शास्त्रार्थ में पूर्ण विजय हुई। यह स्वामी दर्शनानन्द का प्रथम महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ था।

२. आगरा में पं. कृपाराम का मौलवी अब्दुल फरह और मौलवी अब्दुल हमीद पानीपती से 'वेद तथा कुरान में से कौन सी पुस्तक इल्हामी है?' विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ उर्दू में प्रकाशित हो गया। इसके मध्यस्थ एक यूरोपीय सज्जन जेसफारनेन नामक थे।

३. १९०४ ई. में एक शास्त्रार्थ प्रसिद्ध ईसाई पादरी ज्वालासिंह से हुआ।

४. जब स्वामी दयानन्द के शिष्य पं. भीमसेन शर्मा आर्यसमाज का पक्ष त्याग कर खुल्लम खुल्ला सनातनी बन गये तो आर्यसमाज के विद्वानों ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। पं. भीमसेन ने बहुत आना-कानी की परन्तु अन्ततो गत्वा उन्हें शास्त्रार्थ सभा में आना ही पड़ा। यह प्रसिद्ध शास्त्रार्थ १९-२०-२१ फरवरी १९०१ ई. में आगरा में हुआ। इसमें आर्यसमाज की ओर से मुख्य प्रवक्ता पं. तुलसीराम स्वामी तथा स्वामी दर्शनानन्द थे। महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य पं. गंगादत्तजी शास्त्री तथा पं. भीमसेन शर्मा (आगरा वाले) भी उपस्थित थे। जब शास्त्रार्थ में निरुत्तर होकर इटावानिवासी पं. भीमसेन जी जाने लगे तो उन्हें सम्बोधन करते हुए पं. कृपाराम ने

उन्हें कहा—पण्डितजी, आप वृद्धावस्था की ओर जा चुके हैं और मैं भी गृहस्थी के झंझटों से मुक्त हूँ। तो अब मृतक पुरुष का श्राद्ध वेदोक्त है या नहीं, इस विषय के लिये आइये आप और मैं दोनों गृहस्थाश्रम छोड़कर संन्यास ले लें। आप भारत भ्रमण पर निकलिये। जहाँ जहाँ आप इसे सिद्ध करेंगे, वहीं वहीं मैं इसका खण्डन करूँगा। मैं इसी समय संन्यस्त होने के लिये तैयार हूँ, आप भी दीक्षा लीजिये। इस निर्भीक वचन को सुनकर पं. भीमसेन घबराकर बोले "आप त्याग कर सकते हैं, परन्तु मैं अभी गृह त्याग नहीं कर सकता।" आगरा शास्त्रार्थ का वृतान्त स्वामी प्रेस, मेरठ से प्रकाशित हो चुका है।

५. ताजपुर (जिला बिजनौर) के एक जमींदार के दीवान प्रसिद्ध नास्तिक थे। उनसे ईश्वर सिद्धि पर शास्त्रार्थ करने के लिये स्वामीजी आमंत्रित किये गये। आपने नास्तिक दीवान द्वारा प्रस्तुत १४ युक्तियों का खण्डन कर दिया और सृष्टिकर्ता ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि में सात प्रबल युक्तियाँ दी, जिनका खण्डन पूर्वपक्षी नहीं कर सका। स्वामी दर्शनानन्द शास्त्रार्थ के लिये इतने लालयित रहते थे कि सूनी रातों में पैदल चल कर मीलों दूरी तय कर शास्त्रार्थ स्थल पर पहुँच जाते।

६. बिजनौर आर्यसमाज के तत्त्वावधान में २९-३० मार्च १९०१ को धर्मसभा और आर्यसमाज के बीच 'प्रायश्चित्त' विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाज की ओर से स्वामी दर्शनानन्द तथा आगरा निवासी पं. भीमसेन शर्मा थे। सनातनी पक्ष के समर्थक इटावावासी पं. भीमसेन तथा मुरादाबादनिवासी पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र थे। यह शास्त्रार्थ लिखित तथा मौखिक दोनों ही रूपों में हुआ।

७. १९६२ वि० में आर्यसमाज धामपुर के वार्षिकोत्सव के अवसर पर स्वामीजी का सनातनी पण्डित व्याकरणकेसरी बिहारीलाल जी से श्राद्ध विषय पर हुआ।

८. देवरिया जिला गोरखपुर में १९०३ में एक बृहत् शास्त्रार्थ मुसलमानों से हुआ। उसमें आर्यसमाज की ओर से स्वामी दर्शनानन्द, पं. रुद्रदत्त, पं. नन्दकिशोरदेव शर्मा, पं. मुरारीलाल शर्मा आदि थे। मुसलमानों की ओर से मौलवी अमृतसरी सनाउल्लाह, मौलवी अब्दुलहक देहलवी, मौलवी अबू रहमत मेरठवासी, मौलवी अब्दुलहमीद पानीपतवासी, मौलवी शुजाअनअली बरेली वाले तथा मौलवी अब्दुल अजीज रहीमाबाद वाले उपस्थित थे। शास्त्रार्थ का विषय वेद अथवा कुरान का ईश्वरोक्त होना था। यह शास्त्रार्थ उर्दू में छपा है।

९. पेशावर में स्वामीजी का मुकाबिला सनातन धर्म के धूर्त विद्वान् पं. जगत्प्रसाद से हुआ। जनता का आग्रह था कि शास्त्रार्थ हिन्दी में हो, जगत्प्रसाद इसके लिये तैयार नहीं था। संस्कृत बोलने में उसकी सहायता करने वाले पं. हरप्रकाश को स्वामीजी ने समझा बुझाकर रावलपिण्डी भेज दिया। फलतः पं. जगत्प्रसाद बिना शास्त्रार्थ किये ही भाग खड़े हुये।

१०. स्वामी दर्शनानन्द का सर्वाधिक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ स्थावर वृक्षों में जीव विषय पर ८ अप्रैल १९१२ को ज्वालापुर महाविद्यालय में आर्यसमाज के ही एक अन्य विद्वान् पं. गणपति शर्मा से हुआ। इसका वृत्तान्त महाविद्यालय के मुखपत्र भारतोदय में उसके सम्पादक पं. पद्मसिंह शर्मा ने प्रकाशित किया था।

११. स्वामीजी का जैन पण्डित गोपालदास बरैया से प्रसिद्ध शास्त्रार्थ 'ईश्वर सृष्टिकर्त्ता' है, विषय पर जून १९१२ में हुआ। इसका परिणाम यह निकला कि पं. दुर्गादत्त शास्त्री तथा पं. शम्भुदयाल, जो जैनमत के समर्थक ब्राह्मण पण्डित थे, जैन पक्ष का परित्याग कर आर्यसमाज में सम्मिलित हो गये। इस शास्त्रार्थ का विवरण भी पुस्तकाकार छप गया है।

११ मई १९१३ को स्वामी दर्शनानन्द दिवंगत हुये। उनके रचित ग्रन्थों

की संख्या ३०० से अधिक है। उनके निम्न शास्त्रार्थ प्रकाशित हो चुके हैं—

१. आगरा शास्त्रार्थ (उर्दू) २. शास्त्रार्थ देवरिया (उर्दू) ३. शास्त्रार्थ पेशावर (उर्दू) महाशय हरिकृष्ण वर्मा, प्रबन्धकर्त्ता वैदिक धर्म प्रचारक ट्रैक्ट सोसाइटी पेशावर द्वारा प्रकाशित। ४. स्थावर में जीव विचार— पं. पद्मसिंह द्वारा सम्पादित तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के मुख पत्र भारतोदय में प्रकाशित, द्वितीय संस्करण तपोभूमि मथुरा के अंक ४, वर्ष १० में विशेषांक के रूप में प्रकाशित। ५. शास्त्रार्थ अजमेर (जून १९१२ में वैदिक यंत्रालय, अजमेर से प्रकाशित)

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।

—दयानन्द सरस्वती

८. पं० तुलसीरामजी स्वामी

आर्यसमाज में अद्वितीय विद्वान् साहित्यकार तथा शास्त्रार्थी विद्वान् पं. तुलसीराम स्वामी का जन्म जेष्ठ शुक्ला ३ शुक्रवार सं. १९२४ वि. में परीक्षितगढ़ जिला मेरठ के पं. हजारीलाल स्वामी के घर हुआ। बाल्यकाल में इनकी शिक्षा पिता के निकट हुई। ९ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा गायत्री मंत्र की दीक्षा दी गई। तेरह वर्ष की आयु में बालक तुलसीराम पर शीतला रोग का भयानक आक्रमण हुआ, जिससे उन्हें एक नेत्र की हानि उठानी पड़ी। तदन्तर गढ़मुक्तेश्वर के पं. लज्जाराम से संस्कृत व्याकरण तथा अन्य शास्त्र पढ़े। १९४० वि. में ऋषि दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदांगप्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर आर्यसमाज की ओर झुके। पुनः १९४१ में देहरादून जाकर पं. युगलकिशोर से अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि व्याकरण के आर्ष ग्रन्थ पढ़े। स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों के वैतनिक लेखक पं. दिनेशराम से कुछ समय तक पढ़े। मेरठ के पं. घासीरामजी के सम्पर्क में आकर तुलसीरामजी ने विधिवत् आर्यसमाज की सदस्यता स्वीकार की। १८८७ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के संगठन में योग दिया।

देवनागरी स्कूल मेरठ में कुछ समय तक आपने संस्कृत अध्यापन का कार्य किया। प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने मेरठ में जब सनातन धर्म सभा के तत्त्वावधान में पौराणिक मन्तव्यों का प्रचार किया तो पं. तुलसीराम स्वामी ने उसका युक्तिपूर्वक खण्डन किया। देवनागरी विद्यालय के मैनेजर ने जब उनसे आर्यसमाज में जाने का निषेध किया तो

वे सेवामुक्त होकर स्वतंत्र रूप से वैदिक धर्म प्रचार में संलग्न हो गये। स्वामीजी ने अपने प्रचार काल में विरोधियों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये। कुचेसर, परीक्षितगढ़, शेरकोट, मवाना, आरा, दानापुर, किराना आदि स्थानों में उनके प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुये। १९४८ वि. में वे उत्तर प्रदेशीय प्रतिनिधि सभा के उपदेशक नियुक्त हुये। १९५० वि. में स्वामी दयानन्द के शिष्य पं. भीमसेन शर्मा ने उन्हें अपने प्रयाग स्थित सरस्वती यंत्रालय के मैनेजर पद पर नियुक्त किया। अब ये पं. भीमसेन के सहयोगी बनकर उनके पत्र 'आर्यसिद्धान्त' में नियमित रूप से सैद्धान्तिक लेख लिखने लगे। परन्तु जब यही पं. भीमसेन आर्यसमाज से पृथक् होकर सनातन धर्मी बन गये तो पं. तुलसीराम ने १९०१ में देहली में उनसे शास्त्रार्थ किया तथा पं. भीमसेन के इस दावे का युक्तिपूर्वक खण्डन किया कि मृतकश्राद्ध का वेदों में विधान है। एक बार महाराजा टिहरी के सभापतित्व में आप का सनातनी पण्डितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ[1]।

मेरठ में आपने १९५५ वि. में स्वामी प्रेस की स्थापना की। १८९७ ई. से 'वेदप्रकाश' नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया। इस पत्र में सैद्धान्तिक लेखों के अतिरिक्त आर्यसिद्धान्त विरोधी ग्रन्थों का सटीक उत्तर प्रकाशित होता था। अनेक शास्त्रार्थों के विवरण भी प्रकाशित होते थे। १९०९ से १९१३ तक आप उत्तरप्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान भी रहे। अपने जीवन के अन्तिम काल में गुरुकुल वृन्दावन में अध्यापन का कार्य किया। इससे पूर्व १८९८ ई. में पं. लेखराम की स्मृति में उपदेशक विद्यालय स्थापित कर उपदेशक तैयार करने का कार्य किया। पं. सत्यव्रत शर्मा, पं. रुद्रदत्त शर्मा, पं. ज्वालादत्त शर्मा, स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द, पं. मणिशंकर, पं. मनुदत्त, पं. मुसद्दीराम शर्मा आदि उपदेश इसी विद्यालय से तैयार हुये थे। संयुक्त प्रान्त के तत्कालीन गवर्नर सर

---

१. इस शास्त्रार्थ में पण्डितजी की सहायता के लिए महमहोपाध्याय पं. आर्यमुनि भी उपस्थित थे।

जेम्स मेस्टन से आपने नैनीताल में भेंट की और आर्यसमाज पर लगाये जाने वाले राजद्रोह जैसे आक्षेपों के विषय में उनका समाधान किया। १७ जुलाई १९१५ को विशूचिका रोग से आपका असामयिक निधन हो गया।

पं. तुलसीराम स्वामी ने जो महत्त्वपूर्ण साहित्य लिखा है उसकी एक सूची इस प्रकार है— १. सामवेद भाष्य, २. श्वेताश्वतरोपनिषद् संस्कृत भाष्य, ३. भास्कर प्रकाश (दयानन्द तिमिर भास्कर का उत्तर), ४. दिवाकर प्रकाश ५. मनुस्मृति भाष्य, ६. षड्दर्शन भाष्य, ७. गीता भाष्य, ८. संस्कृत भाषा ४ भाग, ९. विदुरनीति भाषानुवाद, १०. मूर्तिपूजा प्रकाश'समीक्षा, ११. पिण्डपितृ यज्ञ, १२. भीमप्रश्नोत्तरी, १३. संध्या, १४. पं. तुलसीराम स्वामी के चार व्याख्यान।

शास्त्रार्थ में प्रयुक्त होने वाला न्याय का पंचावयवी वाक्य

१. प्रतिज्ञाः साध्य का निर्देश प्रतिज्ञा वाक्य कहलाता है।

२. साध्य को सिद्ध करने के लिये जो युक्ति दी जाती है उसे हेतु कहते हैं।

३. उदाहरण—साध्य के सदृश धर्मवान् होने से दोनों धर्मों की समता करना उदाहरण कहलाता है।

४. उपनय—साध्य के उपसंहार को उपनय कहते हैं।

५. निगमन—साधर्म्य अथवा वैधर्म्य से पक्ष को सिद्ध कर पुनः दोहराना निगमन कहलाता है।

९. स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती

स्वामी अच्युतानन्द का जन्म खुशाब जिला सरगोधा (पश्चिमी-पाकिस्तान) में हुआ था। आप नवीन वेदान्त के अनुयायी थे तथा आपकी विस्तृत शिष्य मण्डली थी। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् तथा उपनिषद् एवं वेदान्त दर्शन के मर्मज्ञ थे। लाहौर में जब आते तो अनेक लोग नये वेदान्त और उपनिषदादि ग्रन्थ पढ़ते। स्वामीजी की विद्वत्ता की ख्याति सुनकर पं. गुरुदत्त भी इनके पास पढ़ने जाने लगे। धीरे धीरे शिष्य गुरुदत्त का स्वामीजी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे नवीन वेदान्त का परित्याग कर ऋषि दयानन्द के भक्त बन गये तथा आजीवन आर्यसमाज का प्रचार करते रहे।

एक बार अमृतसर में सनातनधर्म के एक पण्डित के साथ आपका संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ और स्वामीजी ने धाराप्रवाह संस्कृत बोलकर विपक्षी पण्डित को निरुत्तर कर दिया। आपके इस शास्त्रार्थ का लोगों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। आप एक उच्चकोटि के लेखक भी थे। आपने चारों वेदों से १००-१०० मंत्रों का संग्रह कर वेदशतक के रूप में सुन्दर व्याख्या लिखी। चारों वेदशतकों के गुटके आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित हुये थे। इन्होंने 'व्याख्यानमाला' नामक एक संस्कृत का सूक्ति ग्रन्थ भी अर्थ सहित प्रकाशित किया था।

१०. महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि

पं. आर्यमुनि का जन्म रुमाणा ग्राम जिला पटियाला में हुआ था। इनका जन्म नाम मनिराम था, परन्तु आर्यसमाज में प्रविष्ट होने पर आपने अपना नाम आर्यमुनि रख लिया। काशी में रह कर आपने संस्कृत का विशद अध्ययन किया। आप डी. ए. वी. कॉलेज लाहौर में संस्कृत तथा दर्शन शास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्त हुये। पं. आर्यमुनि ने वेदान्त के शंकराचार्य प्रतिपादित अर्थों का खण्डन करते हुये ईश से लगाकर तैतिरीय उपनिषद् पर्यन्त आठ उपनिषदों का भाष्य लिखा। इसी प्रकार षड् दर्शनों पर भी विशद भाष्य लिखे। गीता, रामायण, महाभारत आदि आर्ष ग्रन्थों पर भी आपके आर्यभाष्य प्रकशित हुये। अंग्रेजी सरकार ने आपके पाण्डित्य को देखकर आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया। इस उपाधि को प्राप्त करने वाले आप एकमेव आर्य विद्वान् थे। आपने अपने जीवन काल में अनेक शास्त्रार्थ किये। लाहौर की आर्यसमाज बच्छोवाली के उत्सव के पश्चात् तीन दिन तक विपक्षी विद्वानों से शास्त्रार्थ और शंका-समाधान का कार्यक्रम चलता था। इस समय पण्डित आर्यमुनि ही आर्य समाज का पक्ष लेकर शास्त्रार्थ करते थे। महात्मा हंसराजजी की अध्यक्षता में पण्डित विश्वबंधु शास्त्री के साथ वेद में इतिहास की सत्ता को लेकर भी प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था, उसमें पण्डित आर्यमुनि भी सम्मिलित थे।

११. शास्त्रार्थ महारथी पं. धर्मभिक्षु

शास्त्रार्थ कला में निष्णात पं. धर्मभिक्षु ने अपने जीवन काल में ईसाई मुसलमानों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये। आप कुरान के मर्मज्ञ विद्वान् थे तथा इस ग्रन्थ की आयतों को स्वर सहित इस प्रकार पढ़ते कि जिसे सुन कर बड़े-बड़े मुल्ला मौलवी भी आश्चर्यचकित हो जाते थे। कादियानी मत के आप विशेषज्ञ समझे जाते थे। शास्त्रार्थ में आपकी हाजिर जवाबी प्रतिपक्षी का मुंह बन्द कर देती। तर्क और प्रमाणों की झड़ी लगा देना, विषयान्तर में न जाना, हेत्वाभास तथा वितण्डा से काम न लेना तथा स्वयं निग्रह स्थान से बचना उनकी शास्त्रार्थ कला की प्रमुख विशेषतायें थीं। आप कई वर्षों तक पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक भी रहे। स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान के पश्चात् आपने लखनऊ में एक उपदेशक विद्यालय भी स्थापित किया था। आपके शिष्यों में पं. विष्णुस्वरूप, पं. विद्याभिक्षु तथा पं. श्यामसुन्दर शास्त्री के नाम उल्लेखनीय हैं। लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'आर्यमुसाफिर' पत्र का भी आपने योग्यतापूर्वक सम्पादन किया। आपका देहान्त कम आयु में हो गया। आपके द्वारा कुछ पुस्तकें भी लिखी गई हैं।

१२. स्वामी योगेन्द्र पाल

आपका जन्म दीनानगर (पंजाब) में हुआ। बाल्यावस्था में ही आप उत्तर प्रदेश चले गये। अरबी फारसी का विशेष अभ्यास किया, पुनः संन्यास की दीक्षा ली। आपके व्याख्यान अत्यन्त ओजस्वी एवं भावपूर्ण होते थे। दीनानगर के मौलवी अब्दुल हक तथा मौलवी सनाउल्लाह अमृतसरी से आपके अनेक शास्त्रार्थ हुये। एक बार जिला गुरदासपुर के जिला मजिस्ट्रेट ने आपके व्याख्यानों पर धारा १४४ लगा दी परन्तु आपने उसकी अवहेलना कर भाषण दिया। 'मुता वा नियोग' आपकी प्रसिद्ध पुस्तक है। आपकी मृत्यु पठानकोट में हुई। अरबी फारसी के प्रसिद्ध विद्वान् पं. देवप्रकाशजी ने आपका पुस्तकालय देखा था जिसमें अरबी फारसी के इस्लाम विषयक ग्रन्थों का बाहुल्य था। इन ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर चिह्न लगे थे, जिनसे आपकी स्वाध्यायशीलता का पता चलता है।

---

१३. पं. छुट्टनलाल स्वामी

आप सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. तुलसीरामजी स्वामी के अनुज थे। पुराणों के निर्मम समालोचक तथा शास्त्रार्थ कला में कुशल थे। भागवत की समीक्षा पर कई पुस्तकें लिखीं। वेदप्रकाश का सम्पादन करते थे। पं. भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित 'ब्राह्मणसर्वस्व' में प्रकाशित आर्यसमाजों के मन्तव्यों की आलोचना का सटीक उत्तर 'वेदप्रकाश' के माध्यम से देते थे।

---

१४. कविरत्न पं० अखिलानन्द शर्मा

कविरत्न अखिलानन्द का जन्म माघ शुक्ला ३ वि० सं० १९३७ को उत्तर प्रदेश के बदायूं जिले के चन्द्रनगर ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम पं. टीकाराम था जिनका यज्ञोपवीत स्वयं ऋषि दयानन्द ने कर्णवास में किया था। बाल्यकाल से ही अखिलानन्द को घर में संस्कृत भाषा बोलने का वातावरण मिला अतः वे देववाणी में विशेष निपुणता प्राप्त कर सके। स्वामी दयानन्द के सहपाठी पं० युगलकिशोर से इन्होंने अध्ययन किया। अलमोड़ा निवासी पं० विष्णुदत्त से साहित्यशास्त्र और काव्य ग्रन्थों का अध्ययनकिया। ये संस्कृत के उच्चकोटि के कवि तथा साहित्यकार थे। संस्कृत में भाषण करना तथा शास्त्रार्थ करना इनके लिये साधारण सी बात थी। शास्त्रार्थ कला के मल्ल थे। जब तक आर्यसमाज में रहे उच्चकोटि के संस्कृत काव्यों का प्रणयन करते रहे। पुनः वर्ण व्यवस्था पर सैद्धान्तिक मतभेद हो जाने के कारण ये आर्यसमाज का परित्याग कर सनातनी बन गये। अब इनका काम ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति दुर्वचन कहना मात्र ही रह गया। सनातन धर्म में भी इन्हें विशेष प्रतिष्ठा नहीं मिली क्योंकि लोग इनकी अस्थिर मति को जान चुके थे। पं० शिव शर्मा से इनके अनेक शास्त्रार्थ हुये और तब इन्हें आर्यसमाज के विरोधी होने का मजा चखना पड़ा। डीडवाना शास्त्रार्थ में भी ये उपस्थित थे, परन्तु आर्यसमाज के विद्वानों के समक्ष बोलने का इनका साहस नहीं हुआ। पाली (मारवाड़) में १९२९ में जब ये सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ करने आये तो पण्डित बुद्धदेव उपाध्याय धार निवासी ने इन्हें पराजित किया।

---

१५. शास्त्रार्थ महारथी पं. मुरारीलाल शर्मा

उत्तर प्रदेश के सर्वप्रथम गुरुकुल सिकन्दरबाद के प्राण स्वरूप पण्डित मुरारीलाल शर्मा इस्लाम के मर्मज्ञ विद्वान् तथा अद्वितीय शास्त्रार्थ महारथी थे। आपका जन्म विक्रम संवत् १९२१ के श्रावण मास में गाजियाबाद में हुआ। पिता का नाम पण्डित रामशरणदास तपस्वी तथा पितामह का नाम पण्डित लक्ष्मणदास चौबे था। बाल्यावस्था में ही आपकी धर्म के प्रति अतीव श्रद्धा थी। घण्टों गायत्री मन्त्र का जप करते। पुराणों का आपने इसी काल में विशद अध्ययन किया था। उर्दू व फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आपने बुलन्दशहर के स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। 'संस्कृत और अरबी भाषा' विषय पर आपका प्रथम व्याख्यान सिकन्दराबाद में हुआ। मुसलमानों ने इस व्याख्यान से रुष्ट होकर अपने मौलवियों को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया, परन्तु वे पण्डित मुरारीलाल को अल्पवयस्क कहकर शास्त्रार्थ करने से कतराते रहे। इसके बाद तो आपने सैकड़ों शास्त्रार्थ किये। अकेले ५-६ हजार मुसलमानों के समूह में बैठकर निर्भीक रूप से शास्त्रार्थ करना आपके अद्वितीय साहस का परिचायक है।

आपने अपने जीवन काल में सहस्रों शास्त्रार्थ पौराणिकों, ईसाइयों तथा मुसलमानों से किये। १८९८ ई. में स्वामी दर्शनानन्दजी के परामर्श से सिकन्दराबाद में प्रथम गुरुकुल की स्थापना हुई। आप वर्षों इस गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहे। आपने शुद्धि आन्दोलन में भी स्वामी श्रद्धानन्द के साथ भाग लिया। सिकन्दराबाद, दिल्ली, सहारनपुर, किरठल, मुंगेर, बुलन्दशहर, अलीगढ़, फर्रुखनगर, खुर्जा आदि नगरों में प्रसिद्ध शास्त्रार्थ कर आपने विजयश्री का वरण किया। पण्डित देवेन्द्रनाथ शास्त्री सांख्यतीर्थ

आपके बड़े पुत्र थे, जो स्वयं शास्त्रार्थ महारथी थे। १९३२ ई. में आपका निधन हुआ। आपने इस्लाम की समीक्षा में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से कतिपय निम्न हैं—इस्लामी तौहीद का नमूना, मुसलमानी के बानी की कहानी, तहारत-मजहबे इस्लाम में, पवित्रता की गड़बड़, रूह की माहियत में उलेमाए इस्लाम की गड़बड़, महजबे इस्लाम में साइन्स की गड़बड़।

ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ का काव्यात्मक वर्णन—

कस्याजनि जगद्भानं ब्रह्मणीदं विदांमण ?
जीवस्य कुत एषोऽभूदज्ञानात्तत्कुत: क्व नु ?
अज्ञानं तिष्ठति ब्रह्मण्यनादि ब्रह्म किं गुणम्।
ज्ञानस्वरूपं तन्नित्यम् ज्ञानं तत्कथमीश्वरे ॥
मायया तद्धि माया का भासमानाऽप्यरूपिणी।
अरूपं भासते किन्तु ? मिथ्योन्मत्तप्रजल्पनम् ॥

स्वामी—ब्रह्म में जगत् का भान किसको हुआ ?

कृष्णानन्द—जीव को—स्वा०—वह अज्ञान किसमें और क्यों ?

कृ०—ब्रह्म में वह अज्ञान अनादि है। स्वा०—ब्रह्म का स्वरूप है।

कृ०—वह ज्ञान स्वरूप नित्य है।

स्वा०—फिर ईश्वर में अज्ञान कहाँ से ? कृ०—माया से।

स्वा०—माया क्या वस्तु है।

कृ०—वह भासमान होती हुई भी अरूप है। स्वा०—अरूप होती हुई कैसे भासती है ? यह सब उन्मत्त प्रलाप है।

१६. पं. भोजदत्त शर्मा 'आर्यमुसाफिर'

यों तो पण्डित लेखराम के पश्चात् आर्यसमाज के अनेक विद्वानों तथा प्रचारकों ने अपने नाम के आगे 'आर्यमुसाफिर' शब्द का प्रयोग किया परन्तु सच्चे अर्थों में पण्डित भोजदत्त ही आर्यमुसाफिर थे। आपका जन्म थाना भवन जिला मुजफ्फर नगर में हुआ। उर्दू और फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा आपको मिली। अध्ययन समाप्ति पर आप पंजाब के मिण्टगुमरी जिले में सिंचाई विभाग के उच्च अधिकारी पद पर नियुक्त हुये। सरकारी कर्मचारी होते हुये भी आप आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में नियमित रूप से भाग लेते। आपके व्याख्यान सामान्य रूप से इस्लाम धर्म के सम्बन्ध में आलोचनाप्रधान होते थे। कतिपय मुसलमानों ने आपके सरकारी सेवा के रहते हुये धर्म प्रचार करने पर आपत्ति की और पण्डित भोजदत्तजी के उच्च अधिकारी अंग्रेज इंजीनियर से इस बात की शिकायत की। फलतः पण्डित भोजदत्त ने अपनी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और सर्वात्मना आर्यसमाज के कार्य में जुट गये।

अब आपने अपना मुख्य कार्यक्षेत्र आगरा नगर बनाया। यहाँ आपने आर्यमुसाफिर मिशन की स्थापना की। मिशन के अन्तर्गत आर्य मुसाफिर विद्यालय प्रारम्भ किया गया तथा 'आर्य मुसाफिर' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकलने लगा। इस विद्यालय का उद्देश्य था आर्यसमाज एवं वैदिक धर्म का प्रचार करने हेतु उच्चकोटि के शास्त्रार्थी उपदेशक तैयार करना। इसमें प्राचीन वेदादि शास्त्रों के अतिरिक्त अरबी फारसी भाषाओं तथा मतमतान्तरों के तुलनात्मक अध्ययन कराने की भी व्यवस्था थी। विद्यालय से स्वर्गीय पण्डित महेशप्रसादजी मौलवी, आलिम फाजिल,

पण्डित कालीचरणजी शर्मा मौलवी, पण्डित मुरारीलालजी शर्मा, ठाकुर अमरसिंहजी आर्यमुसाफिर, कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर, पण्डित राम सहाय शर्मा, पण्डित बिहारीलालजी शास्त्री आदि उपदेशक और वक्ता तैयार हुये। पण्डित भोजदत्त ने शुद्धि के क्षेत्र में अपूर्व कार्य किया। भूतपूर्व बीकानेर राज्य के थानेदार अकबर खां शीराजी को शुद्ध कर उसका नाम ठाकुर उत्तमसिंह रक्खा गया। अरबी फारसी के एक अन्य विद्वान् मौलाना गुलाम हैदर, आर्य मुसाफिर में लिखे जाने वाले इस्लाम के समीक्षात्मक लेखों को एक बार पढकर अत्यन्त उत्तेजित अवस्था में पण्डित भोजदत्तजी के पास आये और उनके सामने अनेक शंकायें प्रस्तुत कीं। पण्डित ने उनका भली भांति समाधान किया। वह पण्डित भोजदत्त की दिव्य मूर्ति से इतना प्रभावित हुआ कि तुरन्त शुद्ध होकर पण्डित सत्यदेव के नाम से आर्यसमाज का उत्साही प्रचारक बन गया। इन पण्डित सत्यदेव ने इस्लाम के सिद्धान्तों की आलोचना में कई पुस्तकें लिखीं यथा—नाराए हैदरी, कुरान में तहरीफ, अर्श सवार-अल्लाह, कुरान से इख्तलाफात, वेदों की तादाद का उत्तर आदि। पण्डित भोजदत्त अपने प्रचार के प्रसंग में समस्त भारत में जाते। सर्वत्र उनका स्वागत होता और मुसलमान उनसे प्रभावित होते। शास्त्रार्थ महारथियों को तैयार करने वाला यह महान् उपदेशक सन् १९१६ में आर्य समाज मन्दिर लोअर बाजार शिमला में परलोक वासी हुआ।

१७. पं. मनसारामशास्त्री 'वैदिक तोप'

जिस समय कालूराम, अखिलानन्द, माधवाचार्य आदि पौराणिक पण्डित, आर्यसिद्धान्तों तथा आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द के विरुद्ध कपोल कल्पित आक्षेप कर जनसाधारण को भ्रमित कर रहे थे, उस समय उनकी असत्य बातों का भण्डाफोड़ करने तथा पौराणिक विश्वासों की दुर्बलता का पर्दाफाश करने का महत्त्वपूर्ण कार्य पं. मनसारामजी ने किया। सनातनी विद्वान् पं. कालूराम ने 'आर्यसमाज की मौत' शीर्षक एक पुस्तक लिखी थी। उसका मुंहतोड़ उत्तर देने के लिये पं. मनसाराम ने 'सनातनधर्म की मौत' शीर्षक बृहत् पुस्तक लिखी तथा दो भागों में पौराणिक पोल प्रकाश लिख कर पं. कालूराम की अनर्गल वाचालता को बन्द किया। इसमें मूर्ति-पूजा, अवतार, श्राद्ध, पुराण आदि सनातनधर्म के सभी मन्तव्यों की युक्ति पूर्ण सप्रमाण समीक्षा की गई है। पंजाब सरकार ने तो इस पुस्तक पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया था।

पं. मनसाराम वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक रहे। आप अपूर्व सूझ बूझ के शास्त्रार्थ महारथी भी थे। मियानी (जिला सरगोधा पश्चिमी पाकिस्तान) में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर आपका शास्त्रार्थ पं. श्रीकृष्ण शास्त्री से होना था। शास्त्रीजी को मैदान में आने में का साहस ही नहीं हुआ। फलतः आपने उसी समय मृतक श्राद्ध की अवैदिकता पर ओजस्वी व्याख्यान दिया। पौराणिकों द्वारा प्रकाशित 'दयानन्द भावचित्रावली' के उत्तर में आपने 'पौराणिक दम्भपर वैदिक बम' शीर्षक एक पुस्तक लिखी थी जो 'एक आर्य' के नाम से प्रकाशित हुई क्योंकि इसका विषय नहले पर दहला मारना ही था।

१८. पं. शिवशंकर शर्मा, काव्यतीर्थ

मिथिला प्रान्त सदा से ही संस्कृत विद्वानों की जन्मभूमि रहा है। इसी प्रदेश के दरभंगा जिले के चिहुंटा ग्राम में पं. शिवशंकर का जन्म हुआ। इनके गुरु संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् 'शिवराज विजय' जैसे उत्कृष्ट गद्य ग्रन्थ के लेखक पं. अम्बिकादत्त व्यास थे जो अपने युग के प्रसिद्ध पौराणिक उपदेशक तथा व्याख्याता थे। पौराणिक गुरु के शिष्य होते हुये भी शिवशंकर के मन में आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास के अंकुर प्रस्फुटित हुये जिसके फलस्वरूप उन्होंने महर्षि दयानन्द का साहित्य पढ़ कर अपने आपको वैदिक धर्म के प्रचार हेतु समर्पित कर दिया। मिथिला जैसे पुराणपन्थी पौराणिक गढ़ में पं. शिवशंकरजी का विरोध होना स्वाभाविक ही था। अतः उन्होंने बिहार को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। १८९८ से १९०० तक रांची में रह कर आपने वहाँ के आर्य नेता बाबू बालकृष्णसहाय के साथ वैदिक धर्म का प्रचार कार्य किया। यहाँ रहते हुये आपने 'आर्यावर्त' पत्र में अनेक सैद्धान्तिक लेख लिखे।

बिहार से चल कर १९०३ में पण्डितजी अजमेर आये तथा स्वामी दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा के तत्त्वावधान में कार्य करते रहे। राजस्थान को केन्द्र बना कर आपने मध्यभारत तथा गुजरात में प्रचार कार्य किया। इसी बीच आपने छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों के संस्कृत तथा हिन्दी में बृहत् भाष्य लिखे। १९०६ में पं. शिवशंकरजी पंजाब चले गये तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तर्गत उपदेशक का कार्य करने लगे। यहाँ आपने ओंकार निर्णय, जाति निर्णय, श्राद्ध निर्णय, त्रिदेव निर्णय तथा वैदिक इतिहासार्थ निर्णय जैसे ग्रन्थ लिखे जो वेदतत्त्वप्रकाश के

शीर्षक से छापे। महर्षि ने ऋग्वेद भाष्य को जिस स्थल पर छोड़ा था, उसके आगे के भाग का भाष्य भी किया। उनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों में वैदिक विज्ञान, वसिष्ठ नान्दनी, चतुर्दश भुवन तथा श्रीकृष्ण मीमांसा आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

ग्रन्थ रचना के साथ साथ पं. शिवशंकरजी ने शास्त्रार्थों में भी भाग लिया। वह युग शास्त्रार्थप्रधान था जब कि पौराणिक पण्डित अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये यदा कदा आर्यसमाज के विद्वानों को शास्त्रार्थ हेतु ललकारते थे। पं. शिवशंकर ने एक ऐसे ही शास्त्रार्थ का उल्लेख अपने ग्रन्थ वैदिक इतिहासार्थ निर्णय की भूमिका में किया है। इस शास्त्रार्थ में एक धूर्त पौराणिक पण्डित[1] ने यजुर्वेद के ३०।१५ मंत्र में 'आखुवाहन गजाननाय' इतना अंश अपनी ओर से मिला कर वेद से चूहावाहन गणेश की सिद्धि करनी चाही थी, परन्तु पं. शिवशंकर के आगे उसकी दाल नहीं गली। १९६६ के वि. आस पास पं. शिवशंकरजी गुरुकुल कांगड़ी में वेदोपाध्याय के पद पर कार्य करते रहे। मिथिला ने पं. शिवशंकर जैसे विद्वान् कम ही उत्पन्न किये हैं।

"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ हूँ और बसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी।"

—दयानन्द सरस्वती

---

१. इस पण्डित का नाम गंगाविष्णु था।

१९. सम्पादकाचार्य पं. रुद्रदत्त

आर्यसमाज की पुरानी पीढ़ी के शास्त्रार्थ कला निपुण विद्वानों में पं. रुद्रदत्त शर्मा का स्थान महत्वपूर्ण है। इनका जन्म धामपुर जिला बिजनौर में मार्गशीर्ष त्रयोदशी संवत् १९११ वि. (सन् १८५४ ई.) को हुआ। इनके पिता पं. काशीनाथ जी संस्कृत के पण्डित तथा ज्योतिष एवं तंत्र शास्त्र के पारंगत विद्वान् थे। रुद्रदत्तजी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। तत्पश्चात् वे अपने चाचा के साथ मथुरा, वृन्दावन और काशी आदि स्थानों में विद्याध्ययनार्थ रहे। इक्कीस वर्ष की अवस्था में विद्या समाप्त कर घर लौटे। उसके पश्चात् वे मुरादाबाद तथा सहारनपुर में आर्योपदेशक होकर वैदिक धर्म के प्रचार में लग गये।

पं. रुद्रदत्त बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे सफल लेखक, वक्ता पत्रकार तथा प्रतिवादिभयंकर शास्त्रार्थ, महारथी, साथ ही संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान्, दर्शन शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित तथा पुराणों के मर्मस्पर्शी समालोचक भी थे। प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित तथा भारतेन्दुकालीन लेखक पं. अम्बिकादत्त व्यास के साथ उन्होंने कई शास्त्रार्थ किये। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार में भी सनातनी विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ हुये। आगरा आर्यसमाज के तत्त्वावधान में उन्होंने पं. अखिलानन्द शर्मा से शास्त्रार्थ किया। उनके द्वारा रचित स्वर्ग में सब्जैक्ट कमेटी, स्वर्ग में महासभा, कण्ठी जनेऊ का विवाह, पुराण परीक्षा, आर्यमत मार्त्तण्ड नाटक, योग दर्शन (व्यास भाष्य एवं भोजवृत्ति का भाषानुवाद) आदि ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इस महापण्डित का निधन अत्यन्त दयनीय स्थिति में हुआ। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रारम्भिक सम्पादकों में आपका नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है।

२०. स्वामी श्रद्धानन्द

आर्यसमाज के अद्वितीय नेता, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रवर्त्तक, शुद्धि और संगठन के मंत्रदाता स्वामी श्रद्धानन्द का एक रूप शास्त्रार्थ महारथी का भी है। जिस समय महात्मा मुन्शीराम जालन्धर को अपनी सामाजिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाकर आर्यसमाज का प्रचार कर रहे थे, उस समय उन्हें अनेक बार विपक्षी विद्वानों से शास्त्रार्थ संग्राम में भी उतरना पड़ा। उन दिनों एक काश्मीरी पं. गोपीनाथ लाहौर से 'अखबारे आम' नामक पत्र निकाल कर आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द को गालियाँ देता था। वह अपने व्याख्यानों में आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिये भी ललकारता। उन दिनों मुन्शीरामजी आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान थे। उन्होंने पं. गोपीनाथ के शास्त्रार्थ आह्वान को स्वीकार कर लिया। १८९८ के लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाज के मुख्य प्रवक्ता महात्मा मुंशीराम थे। शास्त्रार्थ में आठ दस हजार व्यक्ति उपस्थित रहते थे। एक मास पश्चात् आर्यसमाज जालंधर के उत्सव पर दोनों महारथियों का पुनः शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ का विषय मूर्तिपूजा, श्राद्ध तथा वेद संज्ञा विचार आदि विषय थे।

पं. गोपीनाथ यद्यपि सनातनधर्म का पक्ष भली भाँति सिद्ध नहीं कर सका, तथापि वह अपने पत्र में आर्यसमाज के ऊपर अपशब्दों की वर्षा करने में पीछे नहीं रहता। फलतः उस पर न्यायालय में अभियोग चलाया गया तथा उसे दण्ड भी मिला। बदले की भावना से उसने 'सद्धर्म प्रचारक' के सम्पादक महात्मा मुन्शीराम पर भी मुकद्दमा दायर किया, परन्तु अभियोग सिद्ध नहीं हो सका तथा महात्माजी बरी हो गये।

---

२१. व्याख्यान वाचस्पति राज्यरत्न मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी

अद्वितीय वक्ता, विद्वान् लेखक तथा समाज सुधारक मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी का जन्म आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा सं. १९२४ के दिन अमृतसर नगर में हुआ। उनके पिता का नाम राधाकृष्ण तथा माता का नाम मायादेवी था। जब ये पांच वर्ष के ही थे कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। बालक आत्माराम की शिक्षा का प्रारम्भ एक मौलवी के द्वारा हुआ, तत्पश्चात् वे गवर्नमेंट स्कूल में प्रविष्ट हुये। यहाँ से दसवीं कक्षा उत्तीर्ण कर आपने गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर में प्रवेश लिया। यहाँ आप आर्यसमाज के मतवाले मनीषी पं. गुरुदत्त के सम्पर्क में आये और उनके विचारों से अनुप्राणित होकर आर्यसमाजी बन गये।

यद्यपि प्रारम्भ में आपका विचार सरकारी नौकरी करने का था, परन्तु पं. गुरुदत्त की प्रेरणा से आपने दयानन्द हाई स्कूल, लाहौर में सैकिण्ड मास्टर के पद को स्वीकार कर लिया। पं. गुरुदत्त की मृत्यु के पश्चात् आप अमृतसर आ गये तथा यहाँ आपने पंजाबी हाई स्कूल की स्थापना की। इसी समय आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री चुने गये। अब आप प्रचार सम्बन्धी कार्यों में इतने संलग्न हो गये कि आपको पंजाबी हाई स्कूल का कार्य छोड़कर सर्वात्मना सभा का कार्य देखने में ही लगना पड़ा। प्रचार के साथ आप शास्त्रार्थ भी करते थे। १९०३ में नगीना (उत्तरप्रदेश) में मौलवी सनाउल्लाह अमृतसरी के साथ आपका निरन्तर १५ दिन तक विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ होता रहा। १९०७ में आप बड़ौदा के महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ के निमंत्रण पर उक्त राज्य में दलित वर्ग के हेतु

स्थापित शिक्षा विभाग के निरीक्षक पद पर प्रतिष्ठित हुये। इस पद पर रह कर आपने दलित वर्ग के उत्थान का अभूतपूर्व एवं प्रशंसनीय कार्य किया। बड़ौदा के सुधारप्रिय नरेश ने आपकी सामाजिक सेवाओं पर मुग्ध होकर आपको राज्यरत्न की उपाधि प्रदान की। मास्टरजी ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जिनमें संस्कारचन्द्रिका, सत्यार्थप्रकाश का उर्दू और पंजाबी अनुवाद, सृष्टि विज्ञान, ब्रह्मयज्ञ, वैदिक विवाहादर्श, वैदिक दिग् विज्ञान, गीतासार आदि उल्लेखनीय हैं। २५ जुलाई १९२८ के दिन आपका स्वर्गवास हुआ।

---

२२. स्वामी कर्मानन्द सरस्वती

इनका मूलनाम बिरदीचन्द था तथा ये हरयाणा के हिसार नगर निवासी अग्रवाल वैश्य थे। इन्होंने जैन मत का तलस्पर्शी अध्ययन किया तथा जैन विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये। जैन मत की आलोचना में महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखीं। परन्तु चरित्रहीन होने के कारण इन्हें आर्यसमाज से बहिष्कृत कर दिया गया। तब ये जैनी बन गये और जैनमत का पक्ष लेकर आर्यसमाज से शास्त्रार्थ करने लगे। अम्बाला छावनी में इनका मीरपुरीजी से शास्त्रार्थ हुआ था। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में जैनमत दर्पण, जैन मत प्राचीन नहीं है, जैनमत लीला, जैन गप्पाष्टक, जैन मत परिचय, जैन मत प्रकाश, भूमण्डल के जैनियों से १०० प्रश्न, जैनियों का काल और ईश्वर, दिगम्बर गप्पदीपिका, जैन भ्रमोच्छेदन, जैनियों का विचित्र ज्योतिष, जैन मत समीक्षा, जैन तिमिर भास्कर, जैन पोल प्रकाश आदि उल्लेखनीय हैं।

---

२३. शास्त्रार्थ महारथी पं. पूर्णानन्द

पण्डित पूर्णानन्द सिंध प्रदेश के निवासी थे। बाल्यकाल में ही गृह त्याग कर साधु अवस्था में संस्कृत का अभ्यास करते हुये भ्रमण करते रहे। जालन्धर में नैयायिक विद्वान् देवीचन्द्रजी से विद्याध्ययन किया। इस समय इनका नाम साधु टीकमानन्द था। जालन्धर से काशी चले गये। इस समय सम्भवतः ४ या ५ मई १८८९ को कारमाइकेल लाइब्रेरी हाल में आपने आर्य संन्यासी स्वामी रामानन्द का एक व्याख्यान सुना और इससे प्रभावित होकर संन्यास दीक्षा ग्रहण कर स्वामी पूर्णानन्द बन गये। यहाँ काशी में आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन की सुविधा न देख कर वैदिक धर्म का प्रचार करते हुये मई १८८९ में पुनः जालन्धर आ गये। २७ मई १८८९ को स्वामी रामानन्द तथा स्वामी पूर्णानन्द दोनों के व्याख्यान आर्यसमाज मंदिर जालंधर में हुये। स्वामी रामानन्द का विचार लाहौर में एक उपदेशक विद्यालय खोलने का था। तदर्थ पण्डित गुरुदत्त से परामर्श करने हेतु वे लाहौर चले गये तथा इसी प्रयोजनवश धन संग्रह भी करने लगे। इधर स्वामी पूर्णानन्द कपूरथला आकर पण्डित हरिकृष्ण से षड्दर्शनों की पुनरावृत्ति करने लगे। कपूरथला राज्य के अर्थमंत्री अछरूमल ने स्वामी पूर्णानन्द को तंग करना शुरू किया। उसका कहना था कि रियासत में आर्यसमाज का प्रचार करने वाला गिरफ्तार कर लिया जायगा। इस पर पण्डित पूर्णानन्द ने पौराणिक मत का चैलेंज देकर खण्डन आरम्भ कर दिया।

पुनः स्वामी पूर्णानन्द गुरदासपुर जिला उप प्रतिनिधि सभा की ओर से वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे। आपने काशी में स्वामी रामानन्द

से संन्यास दीक्षा जरा जल्दी में और वैदिक आश्रम व्यवस्था पर पूर्ण चिंतन किये बिना ही ले ली थी। अब अनुभव के आधार पर आपने पुनः गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना उचित समझा तथा एक धर्मनिष्ठा देवी जानकी से विवाह कर लिया। अब आप पण्डित पूर्णानन्द के नाम से विख्यात हुये। पौराणिकों से आपके कई प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुये। अमृतसर में एक मौलवी से भी शास्त्रार्थ हुआ। फतहगढ़ चूड़ियाँ में पौराणिकों से शास्त्रार्थ कर आपने धाक जमाई। बटाला आपका केन्द्र स्थान रहा। ठाकुर प्रवीणसिंह भजनोपदेशक के साथ आपने पूर्वी अफ्रीका में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार किया। १९२३ ई० में आपका देहान्त हुआ। धर्मप्रचार में आपकी लगन का पता इस बात से लगता है कि एक बार जब आप व्याख्यान दे रहे थे तो समाचार मिला कि आपका पुत्र बीमार है। आपने कहा कि व्याख्यान समाप्त होने पर देखा जायगा। व्याख्यान की समाप्ति पर पता चला कि लड़के की तो मृत्यु हो गई। तब आप कहने लगे कि अब क्या है, अब तो प्रचारयात्रा पूरी कर ही घर जायेंगे। ऐसे सर्वस्व त्यागी उपदेशकों ने ही आर्यसमाज की वाटिका को अपने रक्त से सींचा था।

ऋषि दयानन्द प्रतिपादित अष्ट सत्य

१. ऋग्वेदादि ईश्वरोक्त शास्त्र तथा अन्य ऋषिमुनि कृत ग्रन्थ।

२. ब्रह्मचर्याश्रम, गुरुसेवा तथा वेदाध्ययन।

३. वर्णाश्रम सेवन तथा पञ्चमहायज्ञ विधान।

४. शास्त्रानुकूल जीवन यापन।

५. शम, दम, तप तथा उपासना सहित वानप्रस्थ धारण।

६. विचार, विवेक, वैराग्यपूर्वक संन्यास ग्रहण।

७. ज्ञान, विज्ञानपूर्वक पराविद्या से परम तत्त्व का चिंतन।

८. अविद्यादि दोष त्याग तथा मोक्ष प्राप्ति।

२४. पं. देवेन्द्रनाथ शास्त्री सांख्यतीर्थ

शास्त्रार्थ महारथी पण्डित मुरारीलाल शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित देवेन्द्रनाथ शास्त्री स्वयं शास्त्रार्थ कला विशारद विद्वान् थे। गुरुकुल सिकन्दराबाद के मुख्याधिष्ठाता पद पर रहते हुये भी आप शास्त्रार्थ तथा धर्म प्रचार कार्य में निरत रहते थे। व्याख्यान कला में निपुण तथा उच्च-कोटि के लेखक भी थे। दस उपनिषदों पर आपने टीका भी लिखी जो आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर से प्रकाशित हुई है। इस्लाम के आप मर्मज्ञ विद्वान् थे तथा मुल्ला मौलवियों से शास्त्रार्थ करना तो आपको पैतृक दाय के रूप में प्राप्त हुआ था। सांख्य शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् तो थे ही। परन्तु आपका देहान्त आकस्मिक रूप से उस समय हो गया जब आप आर्यसमाज नरही लखनऊ के वार्षिकोत्सव पर एक मौलवी साहब से शास्त्रार्थ कर रहे थे। इस प्रकार अद्वितीय प्रतिभा के धनी इस विद्वान् का असामायिक निधन आर्यसमाज की अपूरणीय क्षति बन गया।

उपनिषद् कालीन शास्त्रार्थ का एक संवाद

गार्गी—यह जो द्योलोक से ऊपर है, पृथ्वीलोक से नीचे है तथा द्यो एवं पृथ्वी के बीच में है, वह किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य—यह सब आकाश में ओतप्रोत है।

गार्गी—यह आकाश किसमें ओतप्रोत है।

याज्ञवल्क्य—यह आकाश अक्षर ब्रह्म में ओतप्रोत है। इसी अक्षर की आज्ञा से सूर्य और चन्द्रमा नियमित होकर स्थित हैं। यही द्योलोक और पृथ्वीलोक का नियामक है।

—बृहदारण्यकोपनिषद्

२५. हरयाणा के अमर गायक-प्रचारक पं. बस्तीराम

पं. बस्तीराम को आर्य संसार एक गायक एवं प्रचारक भजनोपदेशक के रूप में जानता है, परन्तु वे आर्य सिद्धान्तों के मर्मज्ञ तथा शास्त्रार्थ करने में भी दक्ष थे, यह बहुत कम लोगों को विदित है। पं. बस्तीराम का जन्म आश्विन कृष्ण ४ संवत् १८९८ गुरुवार को ग्राम खेड़ी सुलतान जिला रोहतक में हुआ। संवत् १९३४ में आप पर चेचक का भयानक आक्रमण हुआ जिससे १९३६ वि. में आपकी दृष्टि शक्ति नष्ट हो गई। आप जीवन भर वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न रहे। देहाती भाषा में लोकोपयोगी भजनों के माध्यम से धर्मप्रचार करना आपकी विशेषता थी। आपने पौराणिकों तथा मुसलमानों से शास्त्रार्थ भी किये।

ग्राम डाबोदा जिला रोहतक में शास्त्रार्थ के परिणामस्वरूप आप ५०० रु. जीत कर ले आये। बात यह हुई कि उक्त ग्राम में जब आप मृतक श्राद्ध का खण्डन करते हुये मनुस्मृति के मृतक श्राद्ध में पशुमांसविषयक प्रक्षिप्त श्लोकों की चर्चा कर रहे थे तो एक दुलीचन्द नामक ब्राह्मण ने खड़े होकर कहा कि यह झूठ है, मनुस्मृति में ऐसा श्लोक ही नहीं है। इस पर पौराणिकों से शास्त्रार्थ ठन गया कि जो हारे वह पांच सौ रुपया विपक्षी को प्रदान करे। आठ दिन की अवधि निश्चित की गई। कोई पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ करने आगे नहीं आया। फलस्वरूप पौराणिकों को ५०० रु. पं. बस्तीराम को प्रदान करने पड़े। १०९ वर्ष की आयु प्राप्त कर पं. बस्तीराम २६ अगस्त १९५९ को स्वर्गवासी हुये। आपके पाखण्डखण्डन के भजन अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

---

२६. पं. लोकनाथ तर्कवाचस्पति

आप मूलत: सिंध प्रान्त के निवासी थे, परन्तु आपका प्रचारक्षेत्र पंजाब रहा। आप आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब के उपदेशक भी रहे। अद्वितीय व्याख्याता, तर्कनिष्णात शास्त्रार्थ महारथी तथा कर्मकाण्ड प्रेमी भावुक विद्वान् थे। आपने पौराणिकों तथा अन्य विधर्मी विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये। पौराणिक आस्थाओं पर इनके प्रहार बड़े तीखे एवं तिलमिला देने वाले होते थे। इन पंक्तियों के लेखक ने पं. लोकनाथ जी को प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् पं. माधवाचार्य तथा पं. अखिलानन्द शर्मा से शास्त्रार्थ करते नवम्बर १९५३ में डीडवाना (राजस्थान) में देखा था। उनका स्वाध्याय कितना गूढ़, शास्त्रार्थ शैली कितनी रोचक और प्रभावपूर्ण थी, यह देखते ही बनता था। उक्त शास्त्रार्थ में माधवाचार्य ने मृतक श्राद्ध को वैदिक तथा ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को अवैदिक सिद्ध करना चाहा परन्तु पं. लोकनाथ जी के तर्क पूर्ण प्रश्नोत्तर से विपक्षी पण्डित के छक्के छूट गये। एक बार तो संस्कारविधि के श्राद्ध प्रकरण में उल्लिखित सव्य अपसव्य प्रकरण के विषय में पं. माधवाचार्य के गलत बयानी करने पर पं. लोकनाथजी ने उसे जिस प्रकार ललकार कर चुनौती दी, उससे पं. माधवाचार्य का चेहरा फक्क हो गया तथा उपस्थित जनता को पौराणिक मत की निर्बलता स्पष्ट रूप से मालूम हो गई।

पं. लोकनाथ केवल शास्त्रार्थ समर के शूरसेनापति ही नहीं थे, उन्होंने आर्यजीवन पद्धति को अपने व्यक्तिगत जीवन में साकार रूप से ढाला था। अपने प्रवचनों में वे संध्या, स्वाध्याय, सत्संग, संस्कार आदि पञ्चसकारों के क्रियात्मक आचरण पर जोर देते थे। उनकी कथनी और करनी में कोई

अन्तर नहीं था। उन्होंने 'भक्त गीता' नामक पुस्तक लिखी जिसमें आर्यों के के दैनन्दिन कर्मकाण्ड का संग्रह किया है। ऋषि दयानन्द के प्रति उनकी भक्ति प्रगाढ़ थी। 'ऋषिराज चालीसा' लिख कर उन्होंने महर्षि को अपनी काव्यपूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी। 'पूजनीय प्रभो' उनकी प्रसिद्ध काव्य रचना है जो आज आर्यसमाज में सर्वत्र प्रचलित हो गई है। आर्य समाज लाहौर छावनी में उनका शास्त्रार्थ पौराणिकों से हुआ।

देश विभाजन से पूर्व पं. लोकनाथजी का कार्यक्षेत्र पंजाब, सिंध तथा सीमाप्रान्त रहा। परन्तु विभाजन के पश्चात् आपने दिल्ली के दीवान हाल आर्यसमाज को अपना केन्द्र बनाया था। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी देशभक्त अमर शहीद सरदार भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार पं. लोकनाथजी के कर-कमलों से ही हुआ था। १९५७ ई. में आपका स्वर्गवास हो गया।

ऋषि दयानन्द प्रतिपादित अष्ट गप्प—

१. मनुष्यकृताः सर्वे ब्रह्मवैवर्तपुराणादयाः।

२. देवबुद्ध्या पाषाणादिपूजनम्।

३. शैवशाक्तवैष्णवगाणपत्यादयः सम्प्रदायाः।

४. तन्त्रग्रन्थोक्तवाममार्गः।

५. भंगादिनशाकरणम्।

६. परस्त्रीगमनम्।

७. चौरीति सप्तमम्।

८. कपटच्छलाभिमानानृतभाषणम्।

२७. शास्त्रार्थ महारथी शिवस्वामी (सरस्वती पं. शिव शर्मा)

पौराणिक तथा इस्लाम धर्म के मर्मज्ञ विद्वान् पण्डित शिव शर्मा सम्भल जिला मुरादाबाद के निवासी थे। आपका सम्पूर्ण जीवन वैदिक धर्म के प्रचार में व्यतीत हुआ। वर्षों तक उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक रहे। आपने जितने शास्त्रार्थ मुसलमानों से किये उतने सम्भवत: अन्य किसी ने नहीं किये। शास्त्रार्थों में आप मधुर तथा अनुत्तेजक वाणी का प्रयोग करते थे। 'चमन इस्लाम की सैर' नामक पुस्तक लिखने के कारण आपको कारावास में रहना पड़ा। जीवन के अन्तिम दिनों में संन्यास ग्रहण कर आप शिव स्वामी सरस्वती के नाम से विख्यात हुये। आपके ग्रन्थ आर्य पुस्तकालय सम्भल से प्रकाशित हुये हैं। 'शास्त्रार्थ महारथी' आपका एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है जिसमें आपने शास्त्रार्थ कला में नैपुण्य प्राप्त करने की दृष्टि से लिखा था। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—सत्यार्थ निर्णय प्रथम भाग, अखिलानन्द का हृदय, ईसाई मत की निस्सारता, कब्रपरस्ती और इस्लाम, मुसलमानी की जिन्दगानी, धर्म शिक्षा आदि।

२८. शास्त्रार्थ महारथी पं. बुद्धदेव मीरपुरी

वि० सं० १९५६ में अमरपुर (जिला फीरोजपुर) में एक पौराणिक पण्डित श्री रामशरणदास के गृह पर पण्डित बुद्धदेवजी का जन्म हुआ। इनके साथ मीरपुरी शब्द जोड़े जाने की भी एक कहानी है। कालान्तर में जब ये आर्यसमाज के प्रचारक्षेत्र में अवतीर्ण हुये तो काश्मीर के अन्तर्गत मीरपुर समाज के पुरोहित पद पर कार्य करने लगे, साथ ही आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में भी उपदेशक पद पर कार्य करते थे। १५ दिन मीरपुर रहते और मास के शेष १५ दिन सभा के कार्यक्रमों पर जाते। उस समय पण्डित बुद्धदेव विद्यालंकार भी सभा के उपदेशक थे। अतः उनसे अपनी भिन्नता व्यक्त करने के लिये इन्होंने अपने को बुद्धदेव मीरपुरी कहना प्रारम्भ कर दिया। अस्तु ! यह तो बुद्धदेवजी के नाम की कहानी है।

इनके नाना संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् थे। उनके सान्निध्य में रह कर बालक बुद्धदेव को पुराणों के सैकड़ों अध्याय तथा देवी देवताओं के स्तोत्र आदि कण्ठस्थ करा दिये गये। इनके चाचा अपने परिवार में एक मात्र आर्यसमाजी थे। चाचा ने इनके हृदय में आर्यसमाज के प्रति अनुराग के अंकुर उत्पन्न किये। व्याकरण का अध्ययन पण्डित बुद्धदेव ने पण्डित चमननाथ नामक संस्कृत विद्वान् के निकट रहकर किया जो स्वयं अमृतसर में ऋषि दयानन्द के व्याख्यान सुन चुके थे। ऋषि के गुरु भाई के शिष्य पण्डित बद्रीदत्त के पास मेरठ में रहकर बुद्धदेव ने अष्टाध्यायी व्याकरण पढ़ा। दर्शन और व्याकरण महाभाष्य का अध्ययन काशी जाकर किया। प्रारम्भ से ही संस्कृत सम्भाषण तथा शास्त्रार्थ कला के प्रति इनकी तीव्र अभिरुचि

थी। काशी के सनातनी पण्डितों को अकसर ये अपनी तर्कपूर्ण शास्त्रार्थ शैली से अवाक् कर देते थे।

अध्ययन समाप्ति के पश्चात् स्वामी दर्शनानन्दजी की प्रेरणा से आप आर्यसमाज के सक्रिय प्रचारक बन गये। जिस समय में मीरपुर में पौरोहित्य का कार्य कर रहे थे, उस समय इनका शास्त्रार्थ पं. माधवाचार्य, पं. अखिलानन्द आदि से हुआ। उसके पश्चात् तो शास्त्रार्थों का एक प्रवाह सा आ गया जिनमें निम्न उल्लेखनीय हैं—

१. शामचौरासी (जिला होश्यारपुर) में पौराणिक पं. श्रीकृष्ण शास्त्री से मीरपुरीजी का स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों की वेदानुकूलता पर शास्त्रार्थ हुआ। इसमें ठा. अमरसिंहजी उनके सहायक थे। विपक्षी अपना पक्ष स्थापित करने में असमर्थ रहा।

२. शास्त्रार्थ ऊधमपुर (जम्मू राज्य) में भी पं. मीरपुरीजी के विपक्ष में उक्त सनातनी पण्डित ही थे। इसमें मीरपुरीजी ने पुराणों की कपोल-कल्पित, सृष्टिक्रम विरुद्ध बातों का खूब पर्दाफाश किया।

३. मियानी (जिला शाहपुर पश्चिमी पाकिस्तान) में मीरपुरीजी तथा श्रीकृष्ण शास्त्री का पुनः शास्त्रार्थ हुआ। अपने पक्ष को निर्बल जानकर पौराणिकों ने शास्त्रार्थ के बीच में ही रासलीला और कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। शास्त्रार्थ बंद हो गया। पौराणिकों की रक्षा हुई। दूसरे दिन पुनः शास्त्रीजी को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा, परन्तु वे सामने नहीं आये। कहते हैं कि पौराणिक मतावलम्बियों ने उस दिन शास्त्रार्थ समर में न उतरने के दण्डस्वरूप उन्हें भोजन भी नहीं दिया।

४. स्थान उचकोट (जिला लायलपुर पश्चिमी पाकिस्तान) में भी मीरपुरीजी का उक्त शास्त्रीजी से पुराणों की वेदानुकूलता पर शास्त्रार्थ हुआ। पौराणिक पण्डित द्वारा गायत्री का अश्लील अर्थ करने पर जनता शास्त्रीजी से इतनी नाराज हुई कि उन्हें चुपचाप वहाँ से भाग जाना

पड़ा। पं. श्रीकृष्ण शास्त्री की यह शिकायत सनातनधर्म के नेता गोस्वामी गणेशदत्त के पास भी पहुंची और उन्होंने शास्त्रीजी को बहुत फटकारा।

५. लाहौर छावनी में पौराणिक पण्डित अखिलानन्द के साथ मीरपुरी जी का शास्त्रार्थ हुआ। यहाँ कुल पाँच शास्त्रार्थ हुये जिनमें आर्यसमाज की ओर से मीरपुरीजी के अतिरिक्त पं. बुद्धदेव विद्यालंकार, पं. लोकनाथ तर्कवाचस्पति तथा ठा. अमरसिंहजी थे। पौराणिकों में अखिलानन्द के अतिरिक्त माधवाचार्य और स्वामी प्रकाशानन्द थे।

६. शास्त्रार्थ हाल्बास (भिवानी के निकट) में मीरपुरी के विपक्ष में पं. जगदीशचन्द्र शास्त्री थे। वे मीरपुरीजी के समक्ष टिक नहीं सके। उन्होंने भविष्य में शास्त्रार्थ करना ही छोड़ दिया। शास्त्रार्थ का विषय था—ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की वेदानुकूलता।

७. अम्बाला छावनी में जन पण्डित स्वामी कर्मानन्द (जो स्वयं पहले आर्य समाजी थे) के साथ मीरपुरीजी का शास्त्रार्थ हुआ।

८. बद्दोमल्ली (जिला स्यालकोट, पश्चिमी पाकिस्तान) में सुप्रसिद्ध पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी के साथ मौलवी सनाउल्लाह अमृतसरी का जीव और प्रकृति के अनादित्व पर शास्त्रार्थ होना था। किसी अपरिहार्य कारणवश देहलवीजी नहीं आ सके। तब मीरपुरीजी के सहयोग से ठाकुर अमरसिंहजी ने शास्त्रार्थ किया और विजय प्राप्त की।

९. करनाल जिले में समुदतीर्थ नामक स्थान में जब आर्यसमाज की स्थापना हुई तो निकट के कौल ग्राम के निवासी पं. माधवाचार्य ने देखा कि मेरी रोटी गई। वे शास्त्रार्थ करने उद्यत हुए। अपने रटे रटाये प्रश्न-'ओम् वाक् वाक्' आदि किस वेद में हैं पूछने लगे और अपने वक्तव्य के अन्त में उपस्थित क्षत्रिय वर्ग के लोगों को भड़काते हुये कहने लगे—ओ क्षत्रियो, तुम्हारे साथ तो स्वामीजी ने बड़ा अत्याचार किया है। पुरुष मर गया है उसकी लाश पड़ी है। दाहकर्म की तैयारियाँ हो रही हैं और स्वामीजी उस मृतक की विधवा स्त्री

के लिये लिखते हैं—'हे स्त्री तू इस मरे हुये पति की लाश को छोड़ कर इन शेष में से किसी को वर के रूप में स्वीकार कर ले।' उत्तर देने के लिये मीरपुरीजी खड़े हुये और कहा, सत्यार्थप्रकाश में 'लाश,' शब्द नहीं है, परन्तु माधवाचार्य अपनी बात पर अड़े रहे। अन्त में सत्यार्थ प्रकाश की पुस्तक लाई गई और एक पौराणिक युवक ने ही प्रासंगिक स्थल पढ़ कर सुनाया—"हे विधवे, तू इस मरे हुये पति की आशा छोड़ के बाकी पुरुषों में से जीते हुये दूसरे पति को प्राप्त कर।' अब तो माधवाचार्य को मैदान छोड़ते ही बना। परन्तु मीरपुरीजी भी माधवाचार्य को लक्ष्य कर यह कहने से नहीं चूके—

आशा को लाशा पढ़ें यही पोप की चाल।
बुद्धि इनकी मारी गई खा मुरदों का माल॥

१०. दसुहा जिला होश्यारपुर में मीरपुरीजी का पुनः पं. श्रीकृष्ण शास्त्री से शास्त्रार्थ हुआ। इसमें पौराणिक साम्प्रदायिकता का जो बखिया उधेड़ा गया, उसने विपक्षी पण्डित को त्रस्त कर दिया।

११. २ मई सन् १९३६ को बटाला जिला गुरदासपुर में मीरपुरीजी का माधवाचार्य से एक और शास्त्रार्थ हुआ जिसमें पौराणिक कथाओं की बीभत्सता और अश्लीलता का पर्दाफाश हो गया। इसमें पौराणिक पक्ष की पराजय का परिणाम यह निकला कि वहाँ की सनातनधर्म सभा ही टूट गई।

१२. न केवल भारतवर्ष में अपितु, मीरपुरीजी ने तो अपने प्रमुख प्रतिपक्षी माधवाचार्य को अफ्रीका के नैरोबी नगर में भी ललकारा। यहाँ माधवाचार्य के साथ शास्त्रार्थ के प्रसंग में जब मीरपुरीजी ने शिवपुरी की अश्लीलतम गाथा दारुवन की कथा सुनानी प्रारम्भ की तो सनातनी बौखला उठे। एक पुराणपन्थी युवक छुरा लेकर पण्डितजी पर प्रहार करने के लिये झपटा। सौभाग्य से मीरपुरीजी तो बच गये, परन्तु आर्यवीर दल के सेनापति को उसकी चोट लग

सभा में खलबली मच गई। पौराणिकों को सभाभवन से निकलना पड़ा और माधवाचार्य तो थर थर कांपते हुये हाथ जोड़ क्षमा प्रार्थना करने लगे।

१३. देहली में वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के उत्सव के अवसर पर आर्यसमाज और सनातनधर्म के बीच जो प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ उसकी अध्यक्षता मीरपुरीजी ने ही की। इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज के प्रमुखवक्ता पं. व्यासदेव शास्त्री थे। इस प्रसंग में लोगों को मीरपुरीजी के गहन दर्शन-ज्ञान का पता चला जब कि वे आनुपूर्वी के साथ दर्शनशास्त्र के सैकड़ों सूत्रों का क्रमश: उच्चारण करते चले गये।

मीरपुरीजी ने हैदराबाद आर्यसत्याग्रह में भी भाग लिया। निजाम की कारावास यातनाओं को वीर सैनिक की भांति सहन किया। २८ अक्टूबर १९६३ को इस महारथी का स्वर्गवास दिल्ली के इर्विन अस्पताल में हो गया। दिवंगत होने के पूर्व वे कई दिनों तक बेहोश रहे थे। हरद्वार से दिल्ली लौटे थे और स्टेशन पर ही बेहोश होकर गिर पड़े। उनके पश्चात् आप होश में नहीं आये।

---

२१. पं० कालीचरण शर्मा, मौलवी, आलिम फाजिल

उर्दू, फारसी और अरबी भाषाओं के अद्वितीय विद्वान्, मुसलमान तथा ईसाई मतों के मर्मज्ञ पं. कालीचरण शर्मा उत्तर प्रदेश के बदायूं जिले के निवासी थे। उनकी शिक्षा आगरे के सुप्रसिद्ध मुसाफिर विद्यालय में हुई थी। इसके संस्थापक आर्यसमाज के अन्यतम शास्त्रार्थ महारथी पं. भोजदत्त शर्मा थे। इसी विद्यालय में पं. महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल, राहुल सांकृत्यायन, ठाकुर अमरसिंहजी कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर, पं. रामसहाय शर्मा (राजस्थान के सुप्रसिद्ध उपदेशक) आदि आर्य संसार के अन्यान्य उपदेशक एवं विद्वानों ने शिक्षा पाई थी। पं. कालीचरणजी ने अपने जीवन काल में अनेक शास्त्रार्थ किये। इन पंक्तियों के लेखक को डीडवाना (राजस्थान) में हुये उस शास्त्रार्थ का स्मरण है जो १९५३ के नवम्बर मास में हुआ था। इस शास्त्रार्थ में यद्यपि आर्यसमाज के मुख्यप्रवक्ता पं. बुद्धदेव विद्यालंकार तथा पं. लोकनाथ तर्कवाचस्पति थे तथापि पं. कालीचरणजी भी आर्यसमाज के विद्वानों की सहायता कर रहे थे।

पं. कालीचरणजी ने न केवल ईसाई एवं इस्लाम का व्यापक अध्ययन किया था, वे जैन एवं बौद्ध साहित्य तथा धर्म के भी तलस्पर्शी विद्वान् थे। उन्होंने इस्लाम के सम्बन्ध में जो आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी हैं उनमें निम्न उल्लेखनीय हैं—अल्लामियाँ का हुलिया, अल्लामियाँ की सुन्नत, अल्लामियाँ का फोटो, इस्लामी गप्पें, काठ का उल्लू, मुसलमानी बुर्का, कुरान और उसकी शिक्षा का नमूना, अल्लामियाँ की चालों का नमूना। इसके अतिरिक्त आपने कुरान का हिन्दी अनुवाद तथा सत्यार्थप्रकाश का अरबी में अनुवाद किया। आपने हजरत मुहम्मद का एक जीवनचरित भी लिखा था। आपने आगरे से 'आर्य मुसाफिर' नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। कानपुर से

आर्य मुसाफिर बुकडिपो के तत्वाधान में आपका साहित्य प्रकाशित हुआ। डी. ए. वी. कालेज, कानपुर में आपने अध्यापन कार्य भी किया। अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आपका कार्यक्षेत्र राजस्थान रहा। १३ सितम्बर १९६८ को आपका बांदीकुई में ९० वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया।

---

३०. पं० व्यासदेव शास्त्री

आप गुरुकुल महाविद्यालय के स्नातक तथा साहित्याचार्य, विद्यानिधि, न्याय, सांख्यतीर्थ आदि संस्कृत उपाधियों के साथ एम. ए., एल. एल. बी. भी थे। प्रारम्भ में सहारनपुर में वकालत की, तत्पश्चात् रामजस कालेज, लाहौर में प्राध्यापन कार्य किया, दिल्ली के शिव मन्दिर सत्याग्रह के अवसर पर आपने आन्दोलन का नेतृत्व भी किया। दिल्ली में जिस समय सनातन-धर्मी विद्वानों ने द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के आस पास बृहत् यज्ञ तथा सम्मेलन किया उस समय आर्यसमाज की ओर से पं. व्यासदेव शास्त्री ने ही करपात्रीजी आदि सनातनी विद्वानों से शास्त्रार्थ किया था। इस शास्त्रार्थ का वृत्तान्त 'दिल्ली दिग्विजय' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। खेद है कि आपका स्वल्प आयु में ही स्वर्गवास हो गया।

---

३१. पदवाक्य प्रमाणज्ञ, महावैया-करण, तपोमूर्ति पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

आर्यसमाज में ऋषि दयानन्द के पश्चात् आर्ष व्याकरण के महान् विद्वान् एवं प्रचारक, सकल शास्त्र निष्णात, भारत के राष्ट्रपति द्वारा संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् के रूप में सम्मान प्राप्त, पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु का जन्म १४ अक्टूबर १८९२ को ग्राम मल्लूपोता जिला जालंधर में हुआ। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। पिता का नाम पण्डित रामदास तथा माता का नाम परमेश्वरी देवी था। आपका प्यार का नाम मौज गोविन्द रक्खा गया परन्तु गुरु ने इन्हें ब्रह्मदत्त नाम से अभिहित किया। तभी से आर्य जगत् में ये पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के नाम से विख्यात हुये। प्रारम्भिक अध्ययन के पश्चात् आप महर्षि दयानन्द प्रतिपादित आर्ष प्रणाली से अध्ययन करने की इच्छा लेकर घर से निकल पड़े। ज्वालापुर महाविद्यालय के आचार्य से यह सुनकर कि आर्ष व्याकरण पद्धति से पढ़ना शक्य नहीं है आप कनखल के स्वामी पूर्णानन्द के पास गये। उनके पास रहकर इन्होंने अष्टाध्यायी महाभाष्य, निरुक्त आदि ग्रन्थ पढ़े। पुन: स्वामी श्रद्धानन्दजी के साहचर्य में रहकर शुद्धि का कार्य करते रहे। अमृतसर के कागज के व्यवसायी श्री रामलाल कपूर का २६ फरवरी १९२८ के दिन जब स्वर्गवास हो गया तो उनके सुपुत्रों सर्वश्री लाला रूपलाल, हंसराज, प्यारेलाल तथा ज्ञानचन्द ने अपने पूज्य पिता की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट की स्थापना की। इस ट्रस्ट के प्रथम प्रधान महात्मा हंसराजजी थे। जिज्ञासुजी इसके ट्रस्टी बनाये गये। दिवंगत होने के समय जिज्ञासुजी इस ट्रस्ट के प्रधान थे तथा अन्त तक ट्रस्ट के माध्यम से आर्ष ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य करते रहे।

कालान्तर में जिज्ञासुजी ने लाहौर के निकट रावी नदी के पार शाहदरा में विरजानन्दाश्रम स्थापित कर संस्कृत अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया जो देश विभाजन काल तक निर्विघ्न रूप से चलता रहा। विभाजन के पश्चात् आपने १९५० में मोती झील, वाराणसी में पाणिनि महाविद्यालय की स्थापना की और अष्टाध्यायी पद्धति से संस्कृत भाषा तथा आर्ष ग्रन्थों का अध्यापन प्रारम्भ किया। जीवन पर्यन्त आप यहीं रहे। इससे पूर्व पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर से आपका लिखित शास्त्रार्थ 'वैदिक देवतावाद' को लेकर हुआ। ऋषि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य में कई मन्त्रों के देवताओं का जो निर्धारण किया था उसे सातवलेकरजी पुरानी देवतानुक्रमणियों के आधार पर अस्वीकार करते हुये कल्पित ठहराते थे। जिज्ञासुजी ने महर्षि के पक्ष को पुष्ट करते हुये सातवलेकरजी के मत का खण्डन किया।

जब स्वामी हरिहरानन्द करपात्री ने काशी तथा कानपुर आदि स्थानों में सर्व वेद शाखा सम्मेलन के अधिवेशन आयोजित किये तथा उनमें वेद विषयक आर्यसमाज एवं सनातन धर्म के मतभेदों पर शास्त्रीय चर्चा करने के लिए जिज्ञासुजी को सादर एवं साग्रह आमंत्रित किया तो जिज्ञासुजी उक्त सम्मेलनों में गये तथा वेद संज्ञा विचार, विशेषतः ब्राह्मण ग्रन्थों तथा शाखा ग्रन्थों के वेद न होने पर उन्होंने अपने विचार प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किये। कानपुर में हुये सर्व वेद शाखा सम्मेलन के अन्तर्गत इस शास्त्रीय विचार को 'वेद संज्ञा विमर्श' शीर्षक ग्रन्थ द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

जब डी. ए. वी. कॉलेज, लाहौर के आजीवन सदस्य तथा अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष पं. विश्वबन्धु शास्त्री का आर्य सिद्धान्तों से मतभेद हो गया तथा वे वेद में लौकिक इतिहास की मान्यता को स्वीकार करने लगे तो आर्यसमाज के क्षेत्र में उनके प्रति रोष व्याप्त हो गया। अन्ततः शास्त्रीजी

से आर्य विद्वानों का शास्त्रार्थ निश्चित हुआ जिसकी अध्यक्षता महात्मा हंसराज जी ने की। पं. राजाराम और पं. चारुदेव पं. विश्वबन्धुजी के सहायक और पक्ष समर्थक थे, जब कि आर्यसमाज के प्रवक्ताओं में महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि, पं. भगवद्दत्तजी, पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु तथा ठाकुर अमरसिंहजी आर्य मुसाफिर थे। शास्त्रार्थ होते होते चार दिन व्यतीत हो गये, परन्तु पं. विश्वबन्धुजी, जो मुख्य प्रतिवादी थे, मौन रहे और पं. राजाराम तथा पं. चारुदेव ही उनके पक्ष का समर्थन करते रहे। शास्त्रार्थ के दिन पं. देवप्रकाशजी ने जो वहाँ उपस्थित थे, महात्मा हंसराजजी से निवेदन किया कि शास्त्रार्थ तो पं. विश्वबन्धुजी के साथ है और वे अब तक मौन हैं। उन्हें स्वयं अपने पक्ष का प्रतिपादन करना चाहिये। तब विश्वबन्धुजी बोले कि मैं अन्त में बोलूंगा किन्तु मेरी शर्त यह है कि मेरे पश्चात् पं. भगवद्दत्त जी न बोलें। अध्यक्ष पद पर आसीन महात्माजी ने उनकी बात स्वीकार कर ली और शास्त्रार्थ पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के उपसंहारात्मक वक्तव्य के साथ समाप्त हो गया। इस वक्तव्य से जनता को पूर्ण निश्चय हो गया कि पं. विश्वबन्धुजी का पक्ष दुर्बल है और वेद में इतिहास नहीं है।

जिज्ञासुजी ने ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य पर संस्कृत तथा हिन्दी में विस्तृत विवरण लिखा, जिसका दश अध्यायात्मक प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। उन्होंने अष्टाध्यायी की संस्कृत में वृत्ति भी लिखी जो प्रकाशित हो गई है। वेदवाणी मासिक पत्रिका का उन्होंने जीवन पर्यन्त सम्पादन किया। उन्होंने अष्टाध्यायी क्रम से संस्कृत भाषा के पठन पाठन के क्षेत्र में जो अद्‌भुत और क्रान्तिकारी परिवर्तन किया उसकी प्रशंसा सनातनधर्म के दिग्गज विद्वान् स्व. महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा, चतुर्वेदी तक ने की थी। वे वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की सिण्डिकेट के सदस्य तथा परोपकारिणी सभा के सभासद् भी थे। उनके अपार वैदुष्य तथा संस्कृत भाषा की निष्काम सेवा को ध्यान में रख भारत के राष्ट्रपति ने १९६४ ई. में

उनको राष्ट्रीय विद्वान् के रूप में सम्मानित किया तथा १५०० रु. वार्षिक की शासकीय वृत्ति देना स्वीकार किया। २१ दिसम्बर १९६४ को रात के २॥ बजे अचानक हृदय गति रुक जाने के कारण आर्यसमाज के इस मूर्धन्य और तपस्वी साधक का स्वर्गवास हो गया। जिज्ञासुजी के शिष्य भारत में सर्वत्र फैले हुये हैं जिनमें पं. युधिष्ठिरजी मीमांसक सर्वोपरि महत्त्व रखते हैं।

वैदिक यन्त्रालय के तत्कालीन प्रबन्धक मुन्शी बख्तावर सिंह द्वारा हिसाब में गड़बड़ करने पर श्री महाराज मैं ने फर्रुखाबाद के लाला निर्भयराम जी को पत्र लिखते हुये अपने सर्व सर्ग परित्यागी परिव्राजक स्वरूप का परिचय देते हुये मार्मिक शब्दावली में लिखा—

"जो तुम इसका प्रबन्ध कुछ न करोगे तो ऐसी लूटमार से हमारे पास के पुस्तकादि भी कोई लूट लेगा। फिर तो हम अपने समीप कुछ न रख सकेंगे और वेद भाष्य आदि सब काम छोड़ देंगे, केवल एक लंगोटी लगा आनन्द में विचरेंगे।

—फर्रुखाबाद का इतिहास-पृ.-१९०

३२. पं. भगवद्दत्ताजी बी. ए.,

रिसर्चस्कालर

वैदिक तथा आर्ष वाङ्मय के महाविद्वान् पं. भगवद्दत्तजी का जन्म २७ अक्टूबर १८९३ को अमृतसर नगर में हुआ। इनके पिता का नाम लाला चन्दनलाल तथा माता का नाम श्रीमती हरदेवी था। १९१३ में संस्कृत विषय लेकर इन्होंने बी. ए. की श्रेणी में प्रवेश लिया, उससे पूर्व ये विज्ञान के विद्यार्थी थे। १९१५ में बी. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। तत् पश्चात् लगभग ६ वर्ष तक डी. ए. वी कालेज लाहौर में अवैतनिक रूप से अध्यापन कार्य किया। १९२१ में उक्त कालेज कमेटी के आजीवन सदस्य बने। मई १९३४ तक कालेज के अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष रहे। इसी बीच कालेज के सुप्रसिद्ध लालचन्द पुस्तकालय में ७००० हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्रित किये। इसी बीच वैदिक वाङ्मय का इतिहास तीन भागों में लिखा जो अपने विषय का अपूर्व ग्रन्थ है। अन्य ग्रन्थों में ऋग्वेद पर व्याख्यान, भारतवर्ष का इतिहास, भाषा का इतिहास आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ आर्यसमाज के शोधक्षेत्र में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। १९३१ के अन्त में जब महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में वेदों में इतिहास विषय पर पं. विश्वबन्धु शास्त्री से आर्य विद्वानों का शास्त्रार्थ हुआ तो उसमें पं. भगवद्दत्तजी आर्यसमाज के प्रमुख वक्ता थे। आपने दृढ़तापूर्वक शास्त्रीजी की उपपत्तियों का खण्डन किया। आपने आपने ग्रन्थों में भी वेद और भारतीय इतिहास विषयक पाश्चात्य विद्वानों की भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं का खण्डन किया है। आपका २६ नवम्बर १९६८ में देहान्त हो गया। □□

३३. पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के छोटे पुत्र पं इन्द्रजी जब गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक बनकर निकले उस समय १९१६ में उनका सनातनधर्म के प्रसिद्ध विद्वान् स्व. महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी से वर्ण व्यवस्था पर शास्त्रार्थ हुआ। उस समय इन्द्रजी का नाम 'इन्द्रचन्द्र वेदालंकार' था। यह शास्त्रार्थ ऐतिहासिक महत्ता का था, जिसमें बैलगाड़ी भरकर पुस्तकें प्रमाण रूप में उपस्थित करने हेतु लाई गई थीं। महात्मा गाँधीजी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। यद्यपि पं. इन्द्रचन्द्र उस समय गुरुकुल के स्नातक बने ही थे तथा उन्हें शास्त्रार्थ करने का अनुभव नाम मात्र को भी नहीं था, इसके विपरीत पं. गिरिधर शर्मा मंजे हुये विद्वान् तथा प्रौढ़ शास्त्रार्थ महारथी थे, तथापि इन्द्रजी द्वारा प्रस्तुत युक्तियों का उन्हें कायल होना पड़ा। इस शास्त्रार्थ का विवरण पं. भीमसेन शर्मा इटावा वाले के पत्र 'ब्राह्मण सर्वस्व' के भाग १३ अंक ५, मई १९१६ पृष्ठ २१७–२२१ पर अतिरंजित रूप में प्रकाशित हुआ। चतुर्वेदीजी ने अपनी पुस्तक 'आत्मकथा और संस्मरण' के पृष्ठ ७७–७८ पर भी इस शास्त्रार्थ का उसी प्रकार एकपक्षीय विवरण दिया है। ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार जिसके कि पं. गिरिधर शर्मा उस समय आचार्य थे, के मुखपत्र 'ब्रह्मचारी' ने भी पक्षपात पूर्ण विवरण छापा। परन्तु सद्धर्म प्रचारक (गुरुकुल कांगड़ी का मुखपत्र) तथा मेरठ के 'वेदप्रकाश' में इस शास्त्रार्थ का यथार्थ विवरण प्रकाशित हुआ था।

---

३४. पं. बुद्धदेव विद्यालंकार

आर्यजगत् के विख्यात वैदिक विद्वान्, अद्वितीय वक्ता तथा शास्त्रार्थ महारथी पं. बुद्धदेव विद्यालंकार मूलतः उत्तरप्रदेश के निवासी थे। आप आप गुरुकुल कांगड़ी के प्रारम्भिक स्नातक थे। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आपने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार विभाग में उपदेशक पद पर कार्य किया। आपकी अद्वितीय शास्त्रीय प्रतिभा दिन प्रतिदिन विकसित होती गई। आपने अपने जीवन काल में सहस्रों शास्त्रार्थ किये। हैदराबाद दक्षिण में आपका सनातनी पण्डित माधवाचार्य से मूर्तिपूजा पर सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ जिसमें आपने माधवाचार्य द्वारा यह कहने पर कि यदि आपकी मूर्तिपूजा में श्रद्धा नहीं है तो स्वामी दयानन्द की तस्वीर पर जूता रख दीजिये, आपने स्वामी जी के चित्र पर बिना किसी हिचकिचाहट के यह जानकर जूता रख दिया कि कागज के चित्र से किसी का मानापमान नहीं होता, यद्यपि बाद में यह विषय आर्यसमाज में अत्यन्त चर्चित रहा और पं. बुद्धदेव जी के इस कृत्य के औचित्य अथवा अनौचित्य पर बराबर विवाद होता रहा।

१९५३ ई. के नवम्बर में डीडवाना आर्यसमाज के तत्त्वावधान में पं. बुद्धदेवजी का माधवाचर्य और अखिलानन्द से यज्ञों में पशुहिंसा तथा स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों की वैदिकता विषयों पर चार घण्टे तक शास्त्रार्थ हुआ। इसमें आपने पुराणों के बखिये उधेड़ कर रख दिये। शिवपुराण की दारु वन की कथा, सूत्र ग्रन्थों के अवकीर्णी व्रत तथा शिवदूती आतिथ्य प्रसंग आदि अश्लील प्रसंगों का पर्दाफाश होते देख कर पौराणिक समुदाय में त्राहि-त्राहि

मच गई। १९५५ के मई मास में पाली स्थित स्वामी रूपारामजी के विज्ञान आश्रम में पं. बुद्धदेव जी का एक गरीबदासी सम्प्रदाय के साधु से नवीन वेदान्त पर शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ प्रसंग में आपने ब्रह्मसूत्र के अपशूद्राधिकरण की शंकर कृत व्याख्या की इतनी मार्मिक समालोचना की कि प्रतिपक्षी को निरुत्तर होना पड़ा। आपने मध्यप्रदेश के नीमच नगर में भी पौराणिकों से शास्त्रार्थ किया था, जिसका वृतान्त प्रकाशित हो चुका है। लाहौर छावनी में आपका पौराणिकों से प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ।

कितना अच्छा होता यदि इस शास्त्रार्थ महारथी के शास्त्रार्थ विषयक अनुभवों तथा संस्मरणों को उनके जीवनकाल में ही लिपिबद्ध कर लिया जाता। मई १९६६ में जब गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में आयोजित वेद सम्मेलन में भाग लेकर इन पंक्तियों का लेखक स्व० पडितजी के साथ कार द्वारा लौट रहा था, तब उसने उनसे अपने शास्त्रार्थ सम्वन्धी रोचक प्रसंग सुनाने की प्रार्थना की थी। पण्डितजी ने अनेक मनोरञ्जक प्रसंग सुनाये भी। चतुर शास्त्रार्थकर्त्ता किस प्रकार प्रतिपक्षी विद्वान् को तुरन्त निग्रह स्थान में पहुंचा देता है, यह उन्होंने बताया। खेद है कि उनके द्वारा वर्णित इन संस्मरणों को भी लिपिबद्ध नहीं किया जा सका। आर्यसमाज के इस अप्रतिम शास्त्रार्थ महारथी का परलोकवास दि. १५ जनवरी १९६९ को दिल्ली में हो गया।

विदेशी भाषा ज्ञान की आवश्यकता

देखो, विदुर, युधिष्ठिर, भीष्म आदि बहुत सी भाषाओं के जाननेवाले थे। वे पश्चिम की बहुत सी भाषाओं को बोल सकते थे। आजकल के शास्त्री महाराजों से यदि कहो कि यावनी और म्लेच्छ भाषा के सीखने में कोई दोष नहीं तो वे कहने लगते हैं—'न वदेद्यावनीं भाषां'।

—उपदेश मञ्जरी—१२ वाँ व्याख्यान

३५. पं. रामचन्द्र देहलवी

सन् १८८१ की रामनवमी के दिन नीमच नगर के मुन्शी छोटेलाल के यहाँ एक बालक का जन्म हुआ। आगे चलकर आर्यसमाज के अद्वितीय वक्ता शास्त्रार्थ महारथी तथा इस्लाम एवं ईसाई मत के मर्मज्ञ विद्वान् के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाला यही बालक था जिसे रामचन्द्र का नाम इसीलिये मिला क्योंकि वह रामनवमी के दिन उत्पन्न हुआ था। जब बालक रामचन्द्र सात वर्ष का ही था, उसकी माता का देहान्त हो गया। पिता ने द्वितीय विवाह कर लिया। रामचन्द्र ने प्राथमिक पाठशाला नीमच में अपना प्रारम्भिक अध्ययन किया। पुनः वे डी. ए. वी. स्कूल, अजमेर में प्रविष्ट हुये तथा यहाँ से प्रथम श्रेणी में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्दौर से आपने एण्ट्रेन्स की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण की। आपके विधिवत् अध्ययन की समाप्ति यहीं हो गई।

जब १८ वर्ष के थे, तभी इनका विवाह हो गया। परिवार का दायित्व आ जाने के कारण आपने पहले तो नीमच के स्कूल में ही अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया, पुनः दिल्ली आकर रैली ब्रदर्स नामक एक अंग्रेजी फर्म में १५ रु० मासिक पर नौकरी कर ली। यद्यपि पण्डित जी का उस दूकान पर कार्य नितान्त सन्तोषजनक था, तथापि एक दिन इस बात पर उनकी अपने मालिक से खटपट हो गई जब कि उसने रविवार को भी आपको काम पर आने के लिये कहा। आपने तुरन्त कह दिया—Even God rested the Seventh Day' ईश्वर ने भी बाइबल के अनुसार सृष्टि की रचना कर सातवें दिन रविवार को विश्राम किया था। इस पर अंग्रेज मालिक बिगड़ पड़ा। अब पं० रामचन्द्र ने विदेशी स्वामी की नौकरी में कुछ भी सार्थकता

नही देखी और त्यागपत्र देकर पृथक् हो गये। अब वे अपने श्वसुर की दूकान पर ही कार्य करने लगे।

दिल्ली के फव्वारे पर सप्ताह में दो दिन मुसलमान मौलवी तथा दो दिन ईसाई पादरी अपने धर्म का प्रचार किया करते थे। इस प्रकार सप्ताह के दो दिन शेष खाली रहते थे। पण्डितजी नियमित रूप से इन विधर्मी उपदेशकों के व्याख्यान सुनने जाते थे। यहाँ उन्हें हिन्दू धर्म पर आक्षेपों की वृष्टि होती दिखलाई दी। अब उन्होंने निश्चय किया कि सप्ताह के शेष दिन वे इसी स्थान पर धार्मिक व्याख्यान दिया करेंगे। इस प्रकार फव्वारे पर जब पं. देहलवीजी ने ईसाई तथा मुसलमान धर्म प्रचारकों का मुंह तोड़ उत्तर देना आरम्भ किया तो उनके श्रोता कम होने लग गये और अन्त में उनका व्याख्यान का कार्यक्रम स्वतः ही बन्द हो गया। अब पूरे सप्ताह देहलवीजी ही व्याख्यान देने लगे। जब फव्वारे पर उनके व्याख्यानों में भीड़ अधिक होने लगी तो वे गांधी मैदान में अपना कार्यक्रम करने लगे। व्याख्यानों का यह क्रम सन् १९१० से १९५० तक निरन्तर बिना किसी बाधा के चलता रहा। अब आर्यसमाज के क्षेत्र में उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली। स्थान स्थान से उनको प्रचार हेतु बुलाया जाने लगा।

आपने एक लूले हाफिज से सम्पूर्ण कुरान का विधिवत् अध्ययन किया। यह अध्ययन २ मास में ही समाप्त हो गया। कुरान का जैसा शुद्ध उच्चारण देहलवी जी का था वैसा बड़े-बड़े मुल्ला मौलवियों का भी नहीं था। देहलवीजी ने बाड़ा हिन्दूराव दिल्ली में पहली बार मौलवियों से शास्त्रार्थ किया। इसमें आपको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। आपके आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। एक बार मुजफ्फरपुर में मुसलमानों से शास्त्रार्थ हुआ। रेवरेण्ड जुडाह नामक ईसाई पादरी मध्यस्थ बने। देहलवीजी ने अपनी शास्त्रार्थ का अद्वितीय प्रदर्शन किया। परिणाम यह निकला कि मध्यस्थ ने अपने निर्णय में उनके विजयी होने की स्पष्ट घोषणा की। पण्डितजी को एक स्वर्ण पदक से पुरस्कृत किया गया। फीरोजपुर आर्यसमाज के उत्सव पर जब पण्डितजी का मौलवी से शास्त्रार्थ हो रहा था तो उनके कुरान के शुद्ध उच्चारण

पर मुग्ध होकर एक पठान नवयुवती छात्रा ने उन्हें १०) रु. से पुरस्कृत करने की घोषणा की इन शब्दों में की—'साडे मौलवी पण्डित तू ए दस रुपये मेरे वल्लों देई।''

उनके अन्य कतिपय शास्त्रार्थों का विवरण इस प्रकार है—

१. एक शास्त्रार्थ में किसी मौलवी से आयत पढ़ने में जबर जर के ऊपर विवाद छिड़ गया। पण्डितजी ने जब कुरान खोलकर वास्तविकता प्रदर्शित की तो मौलवी ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए अपने कान पकड़ लिये। यह भी पण्डितजी की आश्चर्यजनक विजय थी।

२, दीनानगर (पंजाब) में मौलवी अल्लाहदित्ता से आपका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें आपने अपनी वाक्‌चतुरता से विपक्षी को मौन कर दिया।

३. फतहपुर हसुवा में दार्शनिक विषयों पर एक मौलवी से शास्त्रार्थ हुआ जो कानपुर से आया था। मौलवी पण्डितजी के प्रश्नों का समाधान नहीं कर सका।

४. बरेली में कुरान के ईश्वरीय ज्ञान होने के प्रश्न पर मौलवियों से शास्त्रार्थ हुआ। इसी अवसर पर जीवात्मा तथा पुनर्जन्म पर भी विचार हुआ।

५. पिलखुआ (जिला मेरठ) में एक नवयुवक मौलवी से आदम और हव्वा के प्रथम दम्पती होने पर शास्त्रार्थ हुआ।

पण्डितजी के सम्पूर्ण शास्त्रार्थों की गणना यदि की जाय तो वह सैकड़ों पर पहुंचेगी। उनके शास्त्रार्थविषयक संस्मरणों का यदि संकलन किया जाता तो वह एक अपूर्ववस्तु होती। देहलवीजी का अध्ययन जितना गम्भीर एवं व्यापक था, उनकी प्रत्युत्पन्नमति तथा वाक्‌चातुर्य भी उतना ही अद्वितीय था। एक मौलवी ने आपसे एक बार व्यंग्यरूप में कहा—पण्डितजी मैं सत्यार्थप्रकाश पर एक लघु शंका करना चाहता हूँ। मौलवी का 'लघु शंका' से आशय कुछ दूसरा ही था। पण्डितजी ने तुरन्त उत्तर दिया—उसे (लघु शंका को) थोड़ी देर अपने मुँह में ही रखिये। ३ फरवरी १९६८

को पण्डितजी का आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली में देहावसान हो गया। आपने इंजील के परस्पर विरोधी वचन, आर्यसमाज और उसके मन्तव्य, सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों का भाषानुवाद आदि पुस्तकें लिखी हैं। आपके कई व्याख्यान टेपरेकर्डर द्वारा सुरक्षित कर लिये गये तथा इन्हें 'देहलवी लेखावली' के नाम से प्रकाशित भी किया गया है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी और गोरक्षा के सम्बन्ध में ऋषि की धारणा—

"यह काम एक के करने का नहीं, और अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य (हिन्दी को अदालतों में प्रवेश दिलाना) सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जायगी।…………बड़े हर्ष के ये दोनों विषय (हिन्दी और गौ रक्षा) प्रकाशित हुये हैं इसलिये जहाँ तक हो सके तन मन धन से सब आर्यों को अति उचित है कि इन दोनों कार्यों को सिद्ध करने में प्रयत्न करें। बार बार ऐसा ही निश्चय होता है कि ये दो सौभाग्यकारक अंकुर आर्यों के कल्याणार्थ उगे हैं, अब हाथ पसार न लेवें इससे दौर्भाग्य की बात क्या होगी?

—फर्रुखाबाद के बाबू दुर्गाप्रसाद के नाम ऋषि का पत्र

३६. पं. शान्तिस्वरूपजी

आप हजरत मुहम्मद साहब के कुरैशी वंश के मुसलमान थे। इसका निवास स्थान उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त था। आर्यसमाज के विद्वानों से शास्त्रार्थ तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करते करते ये वैदिक धर्म की सत्यता के कायल होकर वैदिकधर्मी बन गये। ओजस्वी वक्ता तथा कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता भी थे। इन्होंने बाद में मुसलमानों से अनेक शास्त्रार्थ किये। जब कुरान की आयतों का शुद्ध ढंग से उच्चारण करते तो मुसलमान श्रोता "वल्लाह, पण्डित इतना अच्छा कलाम मजीद पढ़ता है" कह उठते। महात्मा गांधी भी इनके भाषणों पर मुग्ध थे। १९३७ में हरदोई जिले से एक राजा को परास्त कर एम. एल. ए. बने। जब महात्माजी को यह विदित हुआ कि पं. शान्तिस्वरूप मुसलमानों से हिन्दू बने हैं तो वे चकित रह गये। महात्मा गाँधी आदि कांग्रेसी नेता मुसलमानों के घर पर भोजन करते थे, परन्तु पण्डितजी ने उन्हें स्पष्ट कह दिया था कि वे अपने सामाजिक नियम नहीं तोड़ सकते। ९२ वर्ष की परिपक्व आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

---

३७. पं. बुद्धदेव उपाध्याय

आप धार निवासी थे। आप अपने युग के अद्वितीय पण्डित तथा शास्त्रार्थ महारथी विद्वान् थे। आपने पाली (राजस्थान) में पौराणिक पण्डित कालूराम से महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ किया। आपने पौराणिक धर्म में गोमांस भक्षण शीर्षक एक पुस्तक भी लिखी थी।

३८. स्वामी परमानन्दजी आगरा वाले

आर्य मुसाफिर विद्यालय के स्नातक थे। संस्कृत के विद्वान् तथा अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। वर्मा में प्रचारक के रूप में भेजे गये थे। मुसलमान, ईसाइयों से डट कर लोहा लेते थे। बम्बई, सौराष्ट्र तथा पंजाब में भी प्रचार किया। १९२३ से १९२५ तक शुद्धि सभा का कार्य करते रहे। दयानन्द जन्म शताब्दी मथुरा में भी अकथनीय कार्य किया।

३९ पं. नन्दकिशोरदेव शर्मा

आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के मुख्य उपदेशक थे। संस्कृत में योग्यतापूर्वक शास्त्रार्थ करते थे।

४० पं. हनुमानप्रसादजी

उत्तरप्रदेश सभा के उपदेशक थे। पौराणिकों से अत्यन्त योग्यतापूर्वक शास्त्रार्थ करते थे।

४१ पं. बंशीधर पाठक

रोचक प्रमाण युक्त व्याख्यान देते थे। भाषण कला में अत्यन्त दक्ष थे। पौराणिकों के प्रश्नों का हृदयहारी समाधान करते थे।

४२. पं. विद्याभिक्षु

लखनऊ विश्वविद्यालय से मौलवी फाजिल परीक्षा उत्तीर्ण की। एम. ए. एल. टी. कर हिन्दू कालेज रुदौली में प्रिन्सिपल रहे। अरबी तथा फारसी भाषा में निपुण थे। मुसलमानों से अनेक शास्त्रार्थ किये। मौलवी लोग इनका बड़ा आदर करते थे। दाराशिकोह कृत उपनिषदों के फारसी अनुवाद का भाषानुवाद कर रहे थे। दृढ़ आर्य, स्पष्ट वक्ता, मिलनसार तथा कर्त्तव्य परायण थे।

---

४३. पं. महाशय केदारनाथजी

पढ़े लिखे बहुत नहीं थे, परन्तु ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा के धनी थे। शास्त्रार्थ में विपक्षी को बातों बातों में ही परास्त कर देते। कांग्रेस आन्दोलन में कई बार कारावास यात्रा की। सारी आयु देश व धर्म की सेवा में व्यतीत की।

---

४४. पं. लक्ष्मीदत्तजी

ये आगरा मुसाफिर विद्यालय के संस्थापक पं० भोजदत्तजी के पुत्र थे। बहुत सफल शास्त्रार्थकर्ता थे। अपनी डाक्टरी का कार्य छोड़कर शास्त्रार्थ करने पहुंच जाते थे। पं० भोजदत्तजी की मृत्यु के पश्चात् मुसाफिर विद्यालय के कुलपति बने। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के बड़े प्रभावशाली वक्ता, लेखक तथा शास्त्रार्थी भी थे। जबलपुर के शास्त्रार्थ में मौलवियों के छक्के छुड़ा दिये।

---

४५. पं. धर्मवीरजी

आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा के स्नातक थे। बड़े विनोदी, ओजस्वी वक्ता तथा सफल शास्त्रार्थी थे। मौलवी इनके तर्कों से घबराते थे। ओजस्वी भाषण देने के कारण इन्हें छः मास का कारागार का दण्ड भी मिला।

---

४६. मुन्शी बलदेवप्रसाद

बरेली के हाई स्कूल में फारसी के शिक्षक थे। उर्दू के अच्छे कवि भी थे। मुसलमानों से इनका शास्त्रार्थ करने का ढंग अत्यन्त श्रेष्ठ था।

---

४७. बाबू पन्नालाल

बरेली के डाकखाने में लिपिक थे। ईसाइयों से बहुत अच्छा शास्त्रार्थ करते थे।

---

४८. श्री जगदम्बाप्रसाद

शाहजहाँपुर निवासी थे। रेलवे में क्लर्क थे। कुरान शरीफ पर अधिकार-पूर्वक बोलते तथा शास्त्रार्थ करते थे।

---

४९. श्री जगदीशचन्द्रजी

पहले विज्ञानभिक्षु के नाम से प्रचार करते थे। शास्त्रार्थकला में दक्ष थे।

---

५०. ठाकुर इन्द्र वर्मा

ओजस्वी, वक्ता, कवि और कर्मठ उपदेशक थे। वादविवाद और शास्त्रार्थ में विपक्षी का टिकना कठिन कर देते। कांग्रेस के कार्यकर्ता भी रहे परन्तु उसकी मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के कारण त्यागपत्र दे दिया।

राजनीतिविषयक महर्षि दयानन्द सरस्वती के उदात्त विचार

चक्रवर्ती राज्य का नाश उस समय तक नहीं होता, जब तक कि आपस में फूट न हो। कुरुवंश में फूट पैदा हो गई और स्वार्थ और विद्रोह बुद्धि ने लोगों को अंधा बना दिया...............महाभारत युद्ध से प्राचीन आर्य लोगों का वैभव सदा के लिये अस्त हो गया। इस सब अनर्थ का कारण केवल यह था कि सम्मति देने का काम नीच और क्षुद्र लोगों को सौंपा गया था। ऐसे अयोग्य जन नेता और परामर्श देने वाले बन गये। जहाँ शकुनि जैसे संकीर्ण हृदय और क्षुद्र मनस्वीजन की सम्मति से राजकार्य चलने लगा, कणिक शास्त्री महाराज धर्माधर्म का निर्णय करने लगे, वहाँ यदि घर में फूट उत्पन्न होकर घर वालों का विनाश हो गया तो आश्चर्य ही क्या ?

—उपदेशमञ्जरी—बारहवाँ व्याख्यान

५१. पं. भगवानस्वरूप न्यायभूषण

आर्यसमाज के वयोवृद्ध विद्वान् तथा आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान पं. भगवानस्वरूपजी न्यायभूषण आर्यराज्य शाहपुरा में कई वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित अधिकारी पद पर विराज रहे थे। उस समय एक जैन विद्वान् पं. वर्द्धमान शास्त्री शाहपुरा आये। उन्होंने दि. ७ मई १९२९ को साधारण जनता में व्याख्यान देते हुये ईश्वर के सृष्टिकर्ता होने का खण्डन किया। यद्यपि उसी समय आर्यसमाज के विद्वान् पं. हरिश्चन्द्रजी शास्त्री ने ईश्वर के सृष्टिकर्ता होने का समर्थन करते हुये उक्त जैन विद्वान् की युक्तियों का खण्डन किया तथापि दूसरे दिन ८ मई १९२९ को जैन विद्वान् अपने कतिपय अनुयायियों सहित आर्यसमाज मंदिर में आये और शास्त्रार्थ करने की इच्छा व्यक्त की। जैन पण्डित ने ११२ प्रश्न आर्यसमाज के सम्मुख लिखित रूप में प्रस्तुत किये जिनमें से अधिकांश 'स्वामी दयानन्द और जैनसमाज' नामक पुस्तक से अक्षरशः उद्धृत थे। पं. न्यायभूषणजी ने दूसरे दिन इन प्रश्नों का लिखित समाधान करते हुये १२१ नये प्रश्न जैन मत पर किये, जिनका उत्तर देना जैन विद्वान् के लिए कठिन हो गया। तथापि जैनियों ने इस शास्त्रार्थ का एकांगी विवरण 'शाहपुरा शास्त्रार्थ' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया। इसके प्रत्युत्तर में आर्यसमाज शाहपुर के तत्कालीन मंत्री विद्याभूषण पं. विश्वेश्वर शर्मा ने 'शाहपुरा शास्त्रार्थ प्रकाश' नामक पुस्तक १९८७ वि. में प्रकाशित कराकर आर्यसमाज द्वारा उठाये गये १२१ प्रश्न, उनके जैन विद्वान् द्वारा दिये गये उत्तर तथा उन उत्तरों की प्रत्यालोचना प्रकाशित की।

---

५२. पं. रामसहाय शर्मा (स्वामी अभेदानन्द सरस्वती)

राजस्थान प्रान्त में गत अर्द्धशताब्दी तक ग्राम ग्राम, नगर नगर में वैदिक धर्म की अलख जगाने वाले पं. रामसहाय शर्मा जब १९१८ में काशी से संस्कृत का अध्ययन समाप्त कर अजमेर आये तो आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा के तत्कालीन प्रधान बाबू गौरीशंकरजी बैरिस्टर की प्रेरणा से उन्होंने आर्योपदेशक का पुनीत कार्य अपने जिम्मे लिया। उन दिनों सभा में केवल एक उपदेशक प्रज्ञाचक्षु पं. छोगालालजी थे। सभा का उपदेशक विभाग इसी वर्ष कोटा चला गया तथा इस विभाग के अधिष्ठाता पद पर कोटा के वकील मुन्शी जीवारामजी को प्रतिष्ठित किया गया। सन् १९२२ में बाड़मेर के प्रसिद्ध वकील पं. बैजनाथ जी की प्रेरणा से आप प्रचार करने राजस्थान के इस सुदूर पश्चिमी प्रदेश में पहुँचे। यहाँ पं. रामसहाय जी ने बाजार में प्रचार करना प्रारम्भ किया, जिस पर स्थानीय सनातनधर्म सभा के प्रधान पं. वंशीधर जी ने आपत्ति की। परन्तु पण्डित जी अपना उपदेश कार्य निर्विघ्न रूप से करते रहे। उसी अवसर पर भारत धर्म महामण्डल के स्वामी हीरानन्द आये। उन्होंने शर्मा जी को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया। कबूतरों के चौक नामक स्थान पर शास्त्रार्थ होने लगा परन्तु जब सनातनी लोगों को अपनी निर्बलता का भान हुआ तो उन्होंने आर्यसमाजी वक्ता पर जलता हुआ लक्कड़ फेंक मारा। सभा भंग हो गई परन्तु उपस्थित जनता पौराणिक पक्ष की दुर्बलता भी समझ गई।

सन् १९२४ में जब पं. रामसहाय जी फतहपुर (शेखावटी) में भगवान् श्रीकृष्ण के निष्कलंक चरित्र का निरूपण कर रहे थे तो गैण्डाराम नामक

एक ब्राह्मण बिगड़ कर कहने लगा कि श्रीकृष्ण तो स्वयं ब्रह्म थे। उन्हें कोई पाप नहीं लगता। वे स्वयं कहते हैं मेरे सोलह हजार पत्नियाँ हैं आदि। अन्ततः शास्त्रार्थ की बातचीत हुई और दूसरे दिन जब आर्यसमाज मन्दिर में शास्त्रार्थ होने लगा तो चारभुजा के मन्दिर का पुजारी नंगी तलवार लेकर आर्य विद्वान् पर दौड़ा। तुरन्त सभा भंग हो गई। अब पुजारी उल्टे आर्य-समाजी वक्ता पर दोष लगाते हुए कहने लगा कि उसको तलवार से मारने का षड्यन्त्र रचा गया था। आर्य उपदेशकों को पुलिस पकड़ कर ले गई और रात भर हवालात में रक्खा। दूसरे दिन जब सभी बातों का पता चला तो उन्हें मुक्त कर दिया गया।

पं. रामसहाय जी ने फुलेरा जंक्शन में भी एक सनातनी विद्वान् से शास्त्रार्थ किया। यह घटना १९२८ की है। वहाँ एक पौराणिक पण्डित प्रतिवर्ष श्री रामचन्द्र जायसवाल के यहां भागवत की कथा करने आया करते थे। इस वर्ष उक्त जायसवालजी आर्यसमाजी बन गये। जब भागवती पण्डित को यह ज्ञात हुआ तो वे कहने लगा कि तुम नास्तिक हो गये हो और तुरन्त उन्होंने आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी। समाज मन्दिर में शास्त्रार्थ होने लगा। सर्वप्रथम कथावाचक ने कहा—यह खेद की बात है कि सनातन काल से चली आई मूर्तिपूजा को आर्यसमाजी नहीं मानते। आर्य-समाजी वक्ता ने कहा कि मूर्तिपूजा वेदों के विपरीत है, जैसा कि श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

तथा भागवत में भी कहा गया है –'यस्यात्मबुद्धिकुणपे धातुके' आदि। अर्थात् जो मनुष्य इस शरीर को ही आत्मा समझता है तथा पत्थर एवं काष्ठ आदि की पूजा करता है, जो जल में तीर्थ बुद्धि रखता है, वह मनुष्यों के बीच गधे के तुल्य है। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में परमात्मा को 'अकाय' कहा गया है तथा ३२ वें अध्याय के तीसरे मंत्र में उसकी प्रतिमा का स्पष्ट

निषेध मिलता है—न तस्य प्रतिमाऽस्ति। इस पर विपक्षी पण्डित ने मूर्तिपूजा की सिद्धि में कतिपय पुराणों के प्रमाण दिये जिन्हें पं. रामसहाय जी ने मानना अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् पौराणिक वक्ता ने एक मंत्र बोला जिससे मूर्तिपूजन की कथमपि सिद्धि नहीं होती थी। मध्यस्थ रूप में वहां के हाई-स्कूल के संस्कृत अध्यापक पं. मुन्नालाल शास्त्री विद्यमान थे। एक अन्य पौराणिक विद्वान् पं. सुरेश शास्त्री तथा दादूपंथी स्वामी निजानन्द आयुर्वेदाचार्य भी बैठे थे। पं. रामसहायजी ने इन विद्वानों से प्रयुक्त मंत्र का मूर्तिपूजा विधान परक अर्थ करने के सम्बन्ध में सम्मति माँगी। इसी पर विपक्षी पण्डित बिगड़ गया और तत्काल सभा त्याग कर चला गया। इस प्रकार पं. रामसहाय जी की शास्त्रार्थ में स्पष्ट विजय हुई।

१९४० में पं. रामसहाय जी मेड़ता नगर में प्रचारार्थ गये और उन्होंने वर्णव्यवस्था के जन्म पर आश्रित न होकर गुण कर्म पर आश्रित होना सिद्ध किया तो पौराणिक दल में तूफान आ गया। एक पौराणिक पं. जयनारायण ने, जो वहाँ संस्कृत के अध्यापक थे, शास्त्रार्थ का आह्वान किया और कहा कि शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में होगा। पं, रामसहाय जी ने यह कथन भी स्वीकार कर लिया। अन्ततोगत्वा समीप के ग्राम डांगावास में शास्त्रार्थ होना निश्चय हुआ। पं. श्रीपति नामक पौराणिक पण्डित अपने साथियों सहित सभास्थल पर उपस्थित हुये। कतिपय प्रश्नोत्तरों के बाद ही उपस्थित जनता को सत्यासत्य का ज्ञान हो गया और ऋषि दयानन्द की जयजयकार के साथ सभा समाप्त हो गई। दूसरे दिन ग्राम के प्रतिष्ठित सज्जनों ने पण्डितजी को अभिनन्दन पत्र प्रदान कर सम्मानित किया। इसी प्रकार पं. रामसहाय जी ने छोटी सादड़ी (मेवाड़) में प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित कालूराम के शिष्य कल्पनाथ शास्त्री से ईश्वर के निराकारवाद पर शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की। इस शास्त्रार्थ के समय पौराणिकों ने बहुत कुछ उपद्रव मचाया, ऋषि दयानन्द के विषय में अनेक अपशब्दों का प्रयोग किया। परन्तु पण्डितजी ने इस सारे वितण्डावाद का डट कर मुकाबिला किया। राजस्थान प्रान्त में वैदिक धर्म की विजयपताका को सर्वत्र फहरा कर पं. रामसहायजी ने निश्चय ही इस प्रान्त का उपकार किया।

५३. पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड

आर्यसमाज के ख्याति प्राप्त विद्वान्, लेखक तथा शास्त्रार्थ कला कुशल सुपण्डित धर्मदेव विद्यावाचस्पति का जन्म १२ फरवरी १९०१ को ग्राम दुनियापुर (जिला मुलतान) में श्री नन्दलाल जी के यहाँ हुआ। सन् १९०९ से १९१६ तक गुरुकुल मुलतान में अध्ययन करने के पश्चात् १९१७ में आप विश्वविद्यालय कांगड़ी के महाविद्यालय विभाग में प्रविष्ट हुये जहाँ अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी आचार्य तथा आचार्य रामदेव जी शिक्षाध्यक्ष थे। मार्च १९२१ में इसी विश्वविद्यालय विभाग से सिद्धान्तालंकार (प्रतिष्ठित) की उपाधि प्राप्त की तथा वेद, संस्कत और अंग्रेजी विषयों में प्रथम रहे। आपको दो स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुये। सन् ११२५ में 'वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र' तथा 'भारतीय समाज शास्त्र' विषयों पर मौलिक निबंध लिख कर विद्यावाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त काशी से संस्कृत धुरीण, तथा अयोध्या से तर्क मनीषी एवं साहित्य भूषण उपाधियाँ भी आपको प्राप्त हुई।

प्रारम्भ में आप गुरुकुल मुलतान के आचार्य रहे। तत्पश्चात् दक्षिण भारत में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में दलितोद्धार, शुद्धि तथा वैदिक धर्म प्रचार का कार्य करते रहे। इसी बीच आपने पौराणिक विद्वानों तथा ईसाइयों से अनेक शास्त्रार्थ किये जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है। ये शास्त्रार्थ मुख्यतया बालविवाह, जातिभेद, अस्पृश्यता, मूर्ति-पूजा, यज्ञों में पशुहिंसा, पशुबलि, आदि विषयों पर हुये। बाल्यविवाह के औचित्य पर शास्त्रार्थ करने के लिये उन्होंने सारे मैसूर राज्य के पण्डितों

तथा वेद पाठशालाओं तथा संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापकों को खुला चैलेंज दिया। यह आह्वान इस प्रकार किया गया था—

यः कश्चिन्निगमागमार्थनिपुणो मैसूरराज्ये ऽखिले
'रूढ़ा बाल्यविवाहपद्धतिरियं वेदानुकूला ध्रुवम्॥
इत्थं साधुमिदं समस्तविदुषां सिद्ध समक्षे भवेत्
सोऽयं सप्रणयं प्रमोदसहितं विद्वान्मया मन्यते॥

यह शास्त्रार्थ दि. २४ जनवरी १९३१ को बैंगलोर नगर के शंकर मठ में हुआ। कर्नाटक भाषा में इसका विवरण प्रकाशित हुआ था। शास्त्रार्थ को सुन कर संस्कृत कालेज के एक प्रिन्सिपल पं. चन्द्रशेखर शास्त्री ने, जो उस स्थान पर उपस्थित थे, पण्डित जी से कहा कि आपकी निर्भीक कथन शैली को देख कर पौराणिक पण्डित तो सिंह के समक्ष शृगालवत् दिखाई दे रहे थे। विपक्षी विद्वान् 'वीरकेसरी' पत्रिका के सम्पादक पं. सीताराम शास्त्री थे। वे पं. धर्मदेव जी की युक्तियों से अत्यन्त प्रभावित हुये और उन्होंने अपने पक्ष को त्याग कर अपनी पुत्री का विवाह १८ वर्ष की आयु में किया। यह पौराणिक पक्ष की स्पष्ट पराजय थी।

१९३८ में धर्मावरम् में पशु यज्ञों के विरोध में शास्त्रार्थ का इतना अच्छा प्रभाव पभाव पड़ा कि 'अहिंसा धर्म प्रचारक पं. धर्मदेव की जय' के नारे लगाते हुये लोगों ने एक विराट जुलूस निकाला। भरी सभा में एक ब्राह्मण उनके शंकर मंदिर में दिये गये भाषण को सुन कर रो पड़ा तथा पण्डित जी के पांव पड़ कर कहने लगा कि मैं आपको शंकर का अवतार मानता हूं। आपने आज मेरी आंखें खोल दीं। मैं भी अब तक पशुहिंसात्मक यज्ञ का समर्थन करता था, अब पता लगा कि यह कितना पाप है। एक डिप्टी कमिश्नर, जिसने पशु यज्ञ के लिये १००० रु. की सहायता दी थी, समझाने पर इतना प्रभावित हुआ कि वह इस यज्ञ में न तो सम्मिलित हुआ और कहने लगा कि मुझे पता नहीं था कि ऐसे यज्ञ वेद विरुद्ध होते हैं।

सन् १९३७ में चन्नपट्टन (मैसूर) में एक मन्दिर के प्रांगण में प्रसिद्ध लिंगायत कथावाचक विद्वान् पं. शिवमूर्ति शास्त्री से पण्डित जी ने मूर्तिपूजा

पर शास्त्रार्थ किया। विपक्षी पण्डित ने स्वीकार किया कि वेदों और उपनिषदों में मूर्तिपूजा का कोई प्रमाण नहीं है। उडपी मठ (दक्षिण कर्नाटक) में सन् १९२३ में पौराणिकों से वर्णव्यवस्था पर शास्त्रार्थ हुआ।

ईसाईयों से भी पण्डित जी के अनेक शास्त्रार्थ हुये। एक ईसाई प्रो. कोइलो ने १९२३ में मदुरा नगर में महर्षि दयानन्द की वेद भाष्य शैली पर शास्त्रार्थ के लिये चैलेंज दिया पर पण्डित जी के द्वारा चैलेंज स्वीकार कर लेने पर शास्त्रार्थ के लिये नहीं आया। अन्य भी फादर कोर्टी, एण्ड्रूज आदि पादरियों से पण्डित जी के शास्त्रार्थ हुये।

एक समकालीन पण्डित की श्री महाराज के विषय में सम्मति—

"हम तो जानते थे कि स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती की ही मीमांसा शास्त्र में अद्वितीयता प्राप्त है—परन्तु आज जब बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्दजी की मीमांसा में प्रगल्भता ज्ञात हुई तो अब मेरा विचार उनकी शास्त्रज्ञता पर अटल हो गया।

गोस्वामी नारायण शास्त्री (ब्रह्मचारी रामानन्द के वि. सं. १९३७ के पुराने नोट के आधार पर)

१. शास्त्रार्थकेसरी पं. अमरसिंह जी आर्यपथिक, सिद्धान्तमार्तण्ड

अरणियाँ जिला बुलन्दशहर में ठाकुर अमरसिंहजी आर्यपथिक का जन्म वैशाख कृष्णा द्वितीया संवत् १९५५ वि. को हुआ। हिन्दी, उर्दू और सामान्य संस्कृत पढ़ने के पश्चात् पं. भोजदत्त जी द्वारा संचालित आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा में आप अरबी, फारसी तथा संस्कृत के साथ वैदिक सिद्धान्तों एवं ईसाइत और इस्लाम के मन्तव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके मई १९१८ में इस विद्यालय के स्नातक हुये। स्व० महात्मा हंसराजजी को इनकी युक्ति प्रमाणपूर्वक शास्त्रार्थ कला एवं व्याख्यान पद्धति बहुत पसन्द आई अतः उन्होंने इनको आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर में उपदेशक पद पर नियुक्त किया।

आपने निम्न विपक्षी विद्वानों से शास्त्रार्थ किये—पौराणिक पण्डित-कालूराम शास्त्री, अखिलानन्द कविरत्न, राजनारायण षट् शास्त्री, श्रीकृष्ण शास्त्री, माधवाचार्य आदि। जैन विद्वान्—स्वामी कर्मानन्द तथा पं. राजेन्द्रकुमार आदि। मुसलमान मौलवी—सनाउल्लाह अमृतसरी, मौ. लालहुसैन, मौ, खुदादाद खाँ, मौ. मुहम्मद अली (बाद में शुद्ध हो गये) मौ. मुहम्मद यूसुफ खां (यह भी पीछे शुद्ध हो गये) अहमदिया सम्प्रदाय के लाहौरी दल के मौलवी अब्दुलहक विद्यार्थी, मिर्जा जाफिर हुसैन, मौ. इस्मतुल्ला, मौ. फजलमोहम्मद शर्मा आदि के साथ बहुत महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ हुये। पौराणिक पण्डित माधवाचार्य आपके समक्ष आने से कतराते हुये बद्दोमल्ली (जिला स्यालकोट), अरणियाँ (जिला बुलन्दशहर), पतरेड़ी

(जिला अम्बाला), बहादुरगढ़ (जिला बुलन्दशहर), हरदुआगंज (जिला अलीगढ़), हापुड़ (जिला मेरठ), पुरबालिया (जिला मुजफ्फरनगर) आदि स्थानों में भाग खड़े हुये।

सत्याग्रह और जेल यात्रा

सन् १९१८ में स्नातक होते ही धौलपुर (राजस्थान) में सत्याग्रह किया। सन् १९३९ में हैदराबाद दक्षिण सत्याग्रह, सन् १९४१ में नूरपुर जिला कांगडा में गिरफ्तार होकर दो मास धर्मशाला जेल में रहे। पाँच मास तक १९३ ए धारा के अन्तर्गत अभियोग चला, वह खारिज हो गया। सन् १९५७ में पंजाब में हिन्दी रक्षा आन्दोलन आरम्भ होने पर हजारों रुपया चन्दा किया, हजारों सत्याग्रही भर्ती किये पर उन दिनों घुटनों में पीड़ा होने तथा वैशाखियों के सहारे चलने के कारण गिरफ्तार नहीं किये गये। गोरक्षा आन्दोलन के अन्तर्गत भी आपने जेल यात्रा की थी।

अध्यापनकार्य

सन् १९२० ई० में लाहौर स्थित दर्शनानन्द उपदेशक विद्यालय के प्राचार्य तथा बाद में आर्य मुसाफिर विद्यालय में आचार्य रहे। १९२७ में महात्मा देवचन्दजी द्वारा खोले गये पुरोहित विद्यालय में आचार्य बने। १९४४ में आर्योपदेशक विद्यालय, हरिद्वार में आचार्य हुये। १९५० में वेद महाविद्यालय अरणियाँ के आचार्य रहे। १९६३ में आर्योपदेशक विद्यालय हापुड़ के आचार्य बने। कुछ दिनों दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार में भी अध्यापक रहे। इनके बहुत से शिष्य उपदेशक, पुरोहित तथा भजनोपदेशक हैं। संवत् २०२४ वि० में पाखण्ड खण्डिनी पताका शताब्दी के उपलक्ष्य में संन्यास ले लिया। संन्यासी होने के पश्चात् दिल्ली में पं. रामेश्वराचार्य शास्त्री के साथ शास्त्रार्थ किया। आपका पुस्तकालय विशाल दुर्लभ ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह है।

आपके निम्न शास्त्रार्थ उल्लेखनीय हैं—

१. श्याम चौरासी (जिला होश्यारपुर) में पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी के साथ आपने पौराणिक पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री से शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ

का विषय था—स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ वेदानुकूल हैं या श्रीमद् भागवतादि पुराण।

२. मियानी (जिला शाहपुर पश्चिमी पंजाब) में पं. श्री कृष्ण शास्त्री के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। अब यह स्थान पाकिस्तान में है। इस शास्त्रार्थ के प्रधान एक प्रतिष्ठित डाक्टर महोदय थे। शास्त्रार्थ के मध्य में उन्होंने पं. श्री कृष्ण शास्त्री से कहा कि आर्यसमाजी विद्वान् बहुत सभ्यता के साथ बोल रहा है, वह अपने पक्ष के समर्थन में प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करता है और युक्तियाँ देता है और आप युक्ति प्रमाण रहित असभ्यता से बोलते हैं, इससे सनातनधर्म का पक्ष गिरता है। शास्त्री मध्यस्थ के इस कथन से रुष्ट हो गये और उन्होंने अगले दिन के लिये शास्त्रार्थ में भाग नहीं लिया जो पं. मनसाराम जी 'वैदिक तोप' से मृतक श्राद्ध पर होना था। पौराणिक लोग इतने बिगड़े कि उन्होंने शास्त्रीजी को भोजन तक नहीं दिया।

३. उचकोठ (जिला लायलपुर पाकिस्तान) में ठाकुर साहब के साथ उपर्युक्त पं. श्री कृष्ण शास्त्री के साथ 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की वेदानुकूलता' विषय पर शास्त्रार्थ हुआ।

४. लाहौर छावनी में ठाकुर अमरसिंहजी ने पं. अखिलानन्द, पं. माधवाचार्य तथा स्वामी प्रकाशानन्द से शास्त्रार्थ किया। पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी उनके सहायक थे।

५. भिवानी के निकट हालूबास नामक स्थान पर ठाकुर साहब ने पौराणिक पण्डित जगदीशचन्द्र शास्त्री के साथ शास्त्रार्थ किया। विषय था ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की वेदानुकूलता।

६. अम्बाला छावनी में जैन विद्वान् पं. राजेन्द्रजी से ठाकुर साहब ने शास्त्रार्थ किया।

७. बद्दोमल्ली (जिला-स्यालकोट) में आर्यसमाज का उत्सव था। उसमें पं. रामचन्द्र देहलवी का मौलाना सनाउल्ला अमृतसरी के साथ जीव और

ईश्वर के अनादित्व पर शास्त्रार्थ होना था। शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने से पूर्व देहलवीजी को तार मिला जिससे ज्ञात हुआ कि वे किसी कारणवश आने में असमर्थ हैं। अब यह समस्या उठी कि शास्त्रार्थ किया जाय या नहीं। अन्त में पं. बुद्धदेवजी मीरपुरी के आग्रह को स्वीकार कर ठाकुर अमरसिंहजी ने उक्त मौलवी से शास्त्रार्थ किया जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

ठाकुर साहब ने 'आर्य सिद्धान्त सागर' नामक एक ऐसे ग्रन्थ का निर्माण किया है जिसमें शास्त्रार्थ में उपयोगी विषयों से सम्बन्धित सैकड़ों शास्त्रीय प्रमाण एकत्रित किये गये हैं। यह आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित हुआ था। ठाकुर साहब अब चतुर्थ आश्रम में अमरस्वामी सरस्वती के रूप में वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न हैं। आप आर्यसमाज के जीवित विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ शास्त्रार्थ महारथी हैं।

"मैं जो कुछ वैदिक धर्मोपदेश कर चुका हूं अथवा करूंगा, उसका प्रायोगिक सुख अपने जीवनकाल में न देख सकूंगा। जो धर्म का बीज बोया गया है, उसका अंकुर तो मेरे सन्मुख ही निकल आया है, वही भविष्य में वृक्ष रूप होकर फल लायेगा।"

—फर्रुखाबाद में श्री महाराज का एक व्याख्यान

२. काव्यतीर्थ पं. बिहारीलाल शास्त्री

शास्त्रीजी का जन्म वि. सं. १९४७ की फाल्गुन शुक्ला को मुरादाबाद जिले के पागबड़ा ग्राम में हुआ। १७ वें वर्ष से आपने अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया। प्राथमिक पाठशाला से लेकर इण्टर कालेज की कक्षाओं तक लगभग ४५ वर्ष पर्यन्त अध्यापन कार्य किया। आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा में ४ वर्ष तक प्रधानाचार्य भी रहे। अध्यापन कार्य के साथ साथ वेद प्रचार के कार्य में योगदान देते रहे। शास्त्री जी के मुख्य शास्त्रार्थ ईसाइयों से हुये। पादरी ज्वालासिंह से शास्त्रार्थ होने पर बिजनौर जिले के अनेक वाल्मीकि (दलित वर्ग की एक जाति) मनुष्य गणना में ईसाई लिखाये जाने से बचा लिये गये। [1] अनेक शास्त्रार्थ मौलवियों से भी हुये जिसके परिणाम स्वरूप सैंकड़ों मुस्लिम नर नारी आर्यधर्म में दीक्षित हो गये। पौराणिक पण्डितों में माधवाचार्य से शास्त्रीजी के कई शास्त्रार्थ हुये। 'मूर्तिपूजा पर प्रामाणिक शास्त्रार्थ' शीर्षक से पुस्तकाकार भी आपका एक शास्त्रार्थ विवरण प्रकाशित हुआ।

माधवाचार्य ने अपनी आदत के अनुसार 'दयानन्दियों की लबड़ धौं धौं' पुस्तक में इस शास्त्रार्थ का गलत विवरण दिया और शास्त्रीजी पर अनेक मिथ्या एवं अनुचित आक्षेप लगाये। इस पर शास्त्रीजी ने बदायूं के प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अदालत में इस पुस्तक के लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक पर मानहानि का मुकद्दमा दायर किया। अब माधवाचार्य घबराये, उन्होंने शास्त्रीजी से लिखित क्षमा याचना की परन्तु वाह री बेशर्माई, कहा भी है, 'एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यं विजयी भवेत्' माधवाचार्य ने अपने अभिनन्दन ग्रन्थ में यह लिख दिया कि शास्त्रीजी ने उनसे क्षमा मांगी। अस्तु। पर्याप्त वृद्ध होने पर भी शास्त्रीजी विधर्मियों का दम्भ दलन करने के लिये बद्धपरिकर हैं।

---

१. इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण आर्यसंसार (कलकता) दिसम्बर १९६५ ई. में प्रकाशित हुआ।

३. पं. युधिष्ठिर मीमांसक

वेद वेदाङ्ग के अद्वितीय विद्वान् पं. युधिष्ठिरजी मीमांसक का जन्म अजमेर जिलान्तर्गत बिडक्च्यावास नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता श्री गौरीलाल जी जो मध्यप्रदेश में अध्यापक थे, आर्यसमाज के प्रति अत्यन्त निष्ठा रखते थे तथा सरकारी सेवा में होते हुये भी धर्म प्रचार के कार्य में सदा निरत रहते थे। मीमांसकजी आर्यसमाज के महान् विद्वान् पद वाक्य प्रमाणज्ञ स्व. पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के शिष्य हैं। जिज्ञासुजी के चरणों में बैठकर वेद, निरुक्त, व्याकरण आदि शास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। आपने संस्कृत व्याकरण विषयक कतिपय प्राचीन ग्रन्थों का उद्धार करते हुये संस्कृत व्याकरण साहित्य का इतिहास भी लिखा है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास, ऋषि दयानन्द की पद प्रयोग शैली, निरुक्त समुच्चय आदि आपके अन्य प्रसिद्ध लिखित तथा सम्पादित ग्रन्थ हैं। आपने अजमेर में प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की स्थापना कर कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन किया। सम्प्रति श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट के शास्त्र और साहित्य प्रकाशन कार्य की गतिविधि का निर्देशन कार्य करते हैं।

अमृतसर में दि. ११ नवम्बर से १९ नवम्बर १९६४ तक अखिल भारतीय सर्ववेद शाखा सम्मेलन का सप्तम अधिवेशन हुआ। इसके अध्यक्ष गोवर्धन पीठ के अधीश्वर जगद्गुरु नामधारी स्वामी निरंजनदेव तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य) थे। स्वामी हरिहरानन्द करपात्री इसके मुख्य संचालक थे। पं. युधिष्ठिरजी को इस सम्मेजन में विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। अतः वे दि. १५ नवम्बर को अमृतसर पधारे। दि. १६ नवम्बर को जब मीमांसकजी विचारस्थल पर पहुँचे तो एक पौराणिक विद्वान् ने पूर्व योजना के अनुसार संस्कृत में वेद में विज्ञान की सत्ता को अस्वीकार करते

हुये कहा—स्वामी दयानन्द ने आधुनिक विज्ञान को देखकर तदनुसार वेद से विज्ञान को सिद्ध करने की चेष्टा की है। उदाहरणार्थ 'आयं गौः पृश्निरक्रमीत्' इस मन्त्र से पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूमना स्वामी जी ने सिद्ध किया है जब कि वेद का सिद्धान्त है कि सूर्य घूमता है। इस पूर्व पक्ष का प्रतिवाद करते हुये पं. युधिष्ठिर जी ने कहा—वेद में विज्ञान है इतना ही नहीं, वेद ही विज्ञान का मूल स्रोत है अतः स्वामी दयानन्द ने वेदार्थ करते समय जिस पृथ्वी भ्रमण का प्रतिपादन किया है वह भारतीय विज्ञान है। आर्य भट्ट ने अपने सिद्धान्त शिरोमणि में पृथ्वी भ्रमण का विस्तार से प्रतिपादन किया है। उन्होंने बलपूर्वक वेद का वैज्ञानिक अर्थ करने का समर्थन किया। इसके पश्चात् पूर्वपक्षी पण्डित ने वेद का मन्त्रार्थ तीन प्रकार का नहीं हो सकता, यह कहा। शंकराचार्य ने भी मीमांसक जी को कहा कि आप 'अग्निमीडे पुरोहितं' इस ऋग्वेद के प्रथम मंत्र का तीन प्रकार का अर्थ सिद्ध कर दिखावें। इस समय तक शास्त्रार्थ का समय समाप्त हो गया था।

द्वितीय दिन जब मीमांसक जी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र का त्रिविधार्थ प्रदर्शित करने लगे तो पूर्वपक्षी ने पैंतरा बदलकर ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं या नहीं, यह विषय विचार के लिये प्रस्तुत कर दिया। मीमांसकजी ने इस प्रश्न का भी समाधान करते हुये कहा कि जिस 'मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इस वचन के अनुसार ब्राह्मण की वेद संज्ञा मानी जाती है वह वचन केवल कृष्ण यजुर्वेद के श्रौत सूत्रों में ही मिलता है। ऋग्वेद शुक्ल यजुर्वेद तथा सामवेद के श्रौत सूत्रों में नहीं है। इसका कारण यह है कि ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद की मंत्र सहितायें स्वतन्त्र हैं और इनके ब्राह्मण भी स्वतंत्र पृथक् हैं, जब कि कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं में मन्त्र और ब्राह्मण का सम्मिश्रण है, अतः प्राचीन परम्परानुसार उनके एक देश मन्त्र की ही वेद संज्ञा प्राप्त थी ब्राह्मण भाग की नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण संहिता का वेदत्व सिद्ध करने के लिये कृष्ण यजुर्वेद के श्रौत सूत्रकारों को ही ऐसा वचन बनाना पड़ा। मीमांसक जी ने इस विषय का समग्र विवेचन अपनी पुस्तक 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् इत्यत्र कश्चिदभिनवो विचारः' में

पृथक् रूप से किया है। करपात्री जी ने मीमांसक जी के इस समाधान पर कोई आक्षेप नहीं किया।

उसी दिन मध्याह्न में मीमांसक जी ने गोपथ ब्राह्मण के "एवमिमे सर्वे वेदा: निर्मिता: सकल्पा: सरहस्या: सब्राह्मणा: सोपनिषत्का; ।" इस वचन को प्रस्तुत करते हुये वेदों से ब्राह्मण ग्रन्थों का पार्थक्य निरूपित किया। इस प्रकार ९ घण्टों तक चलने वाले इस शास्त्रार्थ का श्रोता लोगों पर अद्वितीय प्रभाव पड़ा। लोगों को यह स्पष्ट विदित हो गया कि आर्यसमाज के एक महारथी विद्वान् ने ही सम्पूर्ण पौराणिक विद्वानों को चुप कर दिया है।

एक सुधारक (दयानन्द सरस्वती) द्वारा अन्य सुधारक (मार्टिन लूथर) की प्रशंसा

जिस देश में केवल सच्चाई के अभिमान से मार्टिन लूथर जैसे उदार चेता पुरुषों ने सामयिक लोगों के विरुद्ध होते हुये भी पोप के अत्याचार के विरुद्ध उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया और अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिये उद्यत हो गये उस देश में यदि ऐश्वर्य और अभ्युदय का डंका बजा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है

—उपदेशमंजरी—१२ वाँ व्याख्यान

४. डा. श्रीराम आर्य

कासगंज (उत्तर प्रदेश) निवासी डा. श्रीराम आर्य को अपनी खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला के कारण आर्य जगत् में विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। आपके द्वारा लिखित ग्रन्थों की संख्या ४० तक पहुंच गई है जिनमें शिवलिंग पूजा क्यों, पुराणों के कृष्ण, मृतक श्राद्धखण्डन, शिवजी के चार विलक्षण बेटे, शास्त्र के चैलेंज का उत्तर, पौराणिक कीर्तन पाखण्ड है, संसार के पौराणिक विद्वानों से ३० प्रश्न, सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था, माधवाचार्य को डबल उत्तर, अवतारवाद पर ३१ प्रश्न, पौराणिक गप्प दीपिका आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने श्रीमद्भागवत तथा गीता आदि ग्रन्थों पर भी समलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। न केवल पौराणिकमत, अपितु नवीन मुनिसमाज, कबीर मत, हंसा मत आदि सम्प्रदायों के खण्डन में भी आपकी लेखनी ने अपना जौहर दिखाया है। इसी प्रकार बाइबल तथा कुरान की समीक्षा में भी आपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। टोंक के एक सनातनी महन्त से आपका लेखबद्ध शास्त्रार्थ भी हुआ था जो प्रकाशित हो गया है। विपक्षियों के आक्षेपों को 'इट का जवाब पत्थर' की शैली में देना अत्यन्त आवश्यक है और इस दृष्टि से डा. श्रीराम आर्य का प्रयत्न श्लाघनीय है। आपकी खण्डनात्मक पुस्तकों पर कई बार उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अभियोग भी चलाये गये। परन्तु आप ससम्मान बरी हुये हैं।

५. पं. शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक'

मौखिक शास्त्रार्थ की भांति लेखबद्ध शास्त्रार्थ का महत्त्व भी स्वीकार किया जाना चाहिये। विपक्षियों के आक्षेपों का लेखबद्ध उत्तर देने में आर्य समाज के मनस्वी लेखक पं. शिवपूजनसिंह कुशवाहा को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। आपने अपने विस्तृत स्वाध्याय के बल पर आर्यसमाज के लेखकों में अपना पृथक् स्थान बना लिया है। अब तक विभिन्न आर्यसामाजिक तथा इतर पत्र पत्रिकाओं में आपके सहस्राधिक लेख छप चुके होंगे। इसी प्रकार आपकी पुस्तकों की संख्या भी पर्याप्त है। 'नीर क्षीर विवेक' (माधवमुख-महाचपेटिका) तथा 'वैदिक सिद्धान्त मार्तण्ड' आपकी शास्त्रार्थ विषयक उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। सनातानी पण्डित माधवाचार्य के द्वारा ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज पर लगाये गये मिथ्या आरोपों और आक्षेपों का सप्रमाण उत्तर इन पुस्तकों में दिया गया है। इसी प्रकार 'वेद का स्वरूप और प्रामाण्य' नामक स्वामी हरिहरान्द करपात्री रचित पुस्तक का भी आपने उत्तर लिखा है जो पौराणिक भ्रमोच्छेदन के नाम से परोपकारी में धारावाही प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार 'ऋषि दयानन्द तथा आर्षसमाज को समझने में पौरोणिकों का भ्रम' शीर्षक पुस्तक में भी आपने पौराणिकों के मिथ्या आक्षेपों का सप्रमाण उत्तर दिया है। कुशवाहाजी की लेखन शैली उद्धरणप्रधान है फलत: उनकी विस्तृत स्वाध्यायशीलता की द्योतक है। इस समय आप भागवतपुराण की विस्तृत समीक्षा लिख रहे हैं।

———

६. शास्त्रार्थ महारथी पं. शान्तिप्रकाश महोपदेशक

पं. शान्तिप्रकाशजी का जन्म ३० नवम्बर १९०६ ई. को हुआ। आपकी बाल्यकालीन भावनायें पौराणिक विचारों से परिपूर्ण थीं। कृष्ण के प्रति आपकी भक्ति इतनी प्रबल थी कि नित्य प्रातः ३ बजे उठकर शौचादि से निवृत्त हो शीतल जल से स्नान करते, तत्पश्चात् कृष्ण चिंतन में लीन हो जाते। अन्य विविध व्रतोपवास करने तथा प्राणयाम की साधना करने से आपका शरीर अत्यन्त कृश हो गया। हठयोग की पद्धति से प्राणायाम साधना का परिणाम यह निकला कि रक्त पित्त प्रकोप से पीड़ित हो गये, तब यह अभ्यास छोड़ना पड़ा। परन्तु इस कृच्छ् साधन का भी एक शुभ परिणाम यह निकला; वह यह कि यदाकदा आपकी चेतना अन्धकाराच्छन्न आकाश में विद्युच्छटा की भांति प्रस्फुटित हो जाती। जब ये तृतीय श्रेणी में ही पढ़ रहे थे मास्टर धनपतराय के परामर्श से इन्हें संस्कृत अध्ययन की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। तब ये एक स्वप्न देखा करते थे कि सहस्रों मुसलमानों की भीड़ में खड़े होकर ये शुद्धि समस्या पर भाषण दे रहे हैं। तब तक इनके विचार आर्यसामाजिक धर्म की ओर पूर्णतया उन्मुख हो चुके थे।

पं. मूलशंकरजी की प्रेरणा से तथा उन्हीं की सहायता से संस्कृत अध्ययन हेतु लाहौर में पं. बुद्धदेव विद्यालंकार द्वारा संचालित पाणिनीय पाठशाला में प्रविष्ट हुये। विद्यालंकारजी उन दिनों अहर्निश शास्त्रार्थ संग्राम में लगे रहते थे अतः इस पाठशाला में केवल दो ही छात्र रह गये थे-पं. शान्तिप्रकाश तथा बुद्धदेवजी की पत्नी श्रीमती सुशीलादेवी। दोनों समान आयु वाले इन सतीर्थ्यों का पठन पाठन में सदा मुकाबिला चलता रहता। गृहस्थ विषयक उत्तर-

दायित्व के कारण सुशीलादेवी का पढ़ना कठिन हो गया। तब लाहौर में दयानन्द उपदेशक विद्यालय खुल जाने पर पं. शान्तिप्रकाशजी उसमें प्रविष्ट हो गये। इस विद्यालय से उन्होंने सिद्धान्त भूषण परीक्षा उत्तीर्ण की जिसमें समस्त अष्टाध्यायी, न्याय, वैशेषिक, उपनिषद्, साहित्य, वेद के कतिपय अंश, निरुक्त, पिंगल, छन्दः सूत्र आदि के अतिरिक्त अरबी का भी विधिवत् अध्ययन करना पड़ा तत्पश्चात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन. प्रयाग की साहित्य रत्न परीक्षा उत्तीर्ण की तथा पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा की तैयारी करने लगे।

उपदेशक विद्यालय के स्नातक बनने के अनन्तर इसी विद्यालय के आचार्य स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी तथा मुख्याध्यापक स्वामी वेदानन्द तीर्थ के आग्रह पर आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक बन गये। प्रथम कार्यक्रम सुलतानपुर लोधी में शास्त्रार्थ का मिला। दूसरे शास्त्रार्थ के अन्तर्गत गीरा नामक स्थान में मिर्जाई सम्प्रदाय के अनुयायियों से शास्त्रार्थ किया, जिसके परिणाम स्वरूप उक्त स्थान पर आर्यसमाज स्थापित हो गया। इसके एक मास पश्चात् पं कालूराम शास्त्री से संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में शर्त यह थी कि जो वक्ता संस्कृत से इतर भाषा का प्रयोग करेगा वह परास्त हुआ समझा जायगा। पं. कालूराम ने चौथी बारी में कहा—'एतानि मिनिटान्यवशिष्यन्ते' इस वाक्य में 'मिनिट' शब्द अंग्रेजी भाषा का प्रयुक्त होने के कारण पं. कालूराम पराजित घोषित किये गये। यह शास्त्रार्थ बरेटा मण्डी के निकट एक ग्राम में हुआ था। पं. मनसाराम शास्त्री इस शास्त्रार्थ सभा के प्रधान थे। पश्चात् दोनों ने भिवानी में शास्त्रार्थ किया। विपक्षी पण्डित भाग गया। फलतः दोनों आर्य विद्वानों का सम्मान हुआ। यह घटना १९२७ ई. की है। यह शास्त्रार्थों का युग था। उन दिनों पं. धर्मभिक्षुजी इस कला के आचार्य थे। उनका देहान्त हो जाने के पश्चात् दिल्ली तथा पंजाब के क्षेत्र में पं. शान्तिप्रकाशजी ने ही शास्त्रार्थ संग्राम के महारथी के रूप में अद्वितीय ख्याति अर्जित की।

प्रायः शास्त्रार्थी विद्वान् संस्कृत या अरबी इन दोनों भाषाओं में से एक के ही जानकार होते थे। पण्डितजी ने दोनों भाषाओं का नियमित अध्ययन

किया था। अरबी की पढ़ाई भी मुरादाबाद निवासी परन्तु लाहौर में बस जाने वाले मौलवी से की थी अतः उन्हें शास्त्रार्थों में सार्वत्रिक सफलता प्राप्त होती थी। प्राय: दिल्ली एवं पंजाब के क्षेत्र में प्रत्येक सप्ताह शास्त्रार्थ इन्हें शास्त्रार्थ के लिये जाना ही पड़ता था।

पं. शान्तिप्रकाशजी का पौराणिकों से एक वृहद् शास्त्रार्थ झोक उतरा (जिला डेरा गाजी खां) में एक काशी के विद्वान् से हुआ। वहाँ की सनातन धर्म सभा के प्रधान पं. टेकचन्दजी ने पण्डितजी को विजयी घोषित किया। कोट अड्डु (जिला मुजफ्फरगढ़) में पौराणिक पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री से अवतारवाद पर शास्त्रार्थ हुआ। इसकी अध्यक्षता सरदार राझा खां आनरेरी मजिस्ट्रेट ने की। अध्यक्ष ने लिखित निर्णय द्वारा पण्डितजी को विजयी घोषित किया। यह शास्त्रार्थ पुस्तकाकार छपा। पाक पट्टन में भी दो बड़े शास्त्रार्थ श्राद्ध विषय पर हुये और इसमें भी पौराणिक विद्वान् हार गये। सालवन (करनाल) में देश विभाजन के पश्चात् पं. माधवाचार्य से दो शास्त्रार्थ हुये जिनमें चालीस ग्रामों की जनता उपस्थित थी। शास्त्रार्थ के विषय नमस्ते और पुराण थे। इन शास्त्रार्थों के फलस्वरूप उस क्षेत्र में सनातन धर्म सभाका कार्य शिथिल पड़ गया। धुनौंदा (जिला महेन्द्रगढ़) में भी माधवाचार्य के साथ दो शास्त्रार्थ हुये जिसमें एक संस्कृत तथा दूसरा हिन्दी में हुआ। एक शास्त्रार्थ पौराणिक प्रतिवादिभयंकर पं. भीमसेन से भी हुआ। विपक्षी पण्डित परास्त हुये।

देश विभाजन से पूर्व पंजाब, दिल्ली, सिंध तथा सीमा प्रान्त में पण्डित जी ने मुसलमानों तथा कादियानी मिर्जाई लोगों से सैंकड़ों शास्त्रार्थ किये। लाहौर में मौलवी अब्दुल हक मिर्जाई से शास्त्रार्थ हुआ। अमृतसर में मौलवी सनाउल्लाह से शास्त्रार्थ किया। मौलवी असमतुल्लाह तथा मिर्जा मुजफ्फर बेग से भी शास्त्रार्थ हुये। राजनपुर में १५ दिन मुजफ्फर बेग के साथ शास्त्रार्थ चलता रहा जिसके परिणाम स्वरूप एक मौलवी की शुद्धि हुई और उसका नाम सत्यपाल रक्खा गया। इसी प्रकार दाजल (डेरा गाजी खां) में एक नव मुस्लिम के साथ तीन दिन तक शास्त्रार्थ करके उसे शुद्ध कर

लिया गया। शेर ग्राम के पास श्री साधुराम ने एक अरबी के विद्वान् मौलवी के साथ पण्डितजी का शास्त्रार्थ कराया, इसमें भी उनकी विजय हुई और इसके फलस्वरूप उक्त सज्जन मुसलमान होने से बच गये। इसके पश्चात् उक्त ग्राम में इनके दो और शास्त्रार्थ हुये जिसमें मिर्जाई मौलवी हार गये और दूसरे मौलवियों से लड़ पड़े।

जिन प्रसिद्ध नगरों में पं. शान्तिप्रकाश जी ने शास्त्रार्थ किये उनके नाम इस प्रकार है—पेशावर, नौशहरा छावनी, टांक, कराची, भोपाल, डेरा गाजी खाँ, तौसा, कोट केसराणी, टिबी केसराणी, सखी सरवर, कोट छुट्टा, झोक उतरा, चोटी डाजल, जामपुर, राजनपुर, कोट मिठ्ठन आदि। इसी प्रकार मुजफ्फरगढ़ जिला (अब पश्चिमी पाकिस्तान में) में भी प्राय: सभी स्थानों पर शास्त्रार्थ किये। शहर सुलतान, अलीपुर तथा कोट बद्दू में बड़े शास्त्रार्थ किये। जिला मुलतान (पश्चिमी पाकिस्तान) में जहानियाँ, मुलतान छावनी, सत्य सिद्धू तथा पंजाब में गोरजा, उचकोट, झंग मध्याना, सरगोधा, पिण्डी भटिया, खुशाब, उस्का, पसरूर, भलवाल, शोरकोट, चीचानतनी, कलास वाला, मियाँ चन्नू, पाक पट्टन, दीपालपुर, लाहौर, अमृतसर, दीनानगर, पठानकोट, बटाला, डलहौजी, कादियां, नवांशहर, द्वावा, दस्का, संगरूर, भटिंडा, कलरियाँ, लुधियाना, समाना, बद्दोमल्ली तथा आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली में भी मुसलमानों के बड़े बड़े शास्त्रार्थ किये। इनमें से दीनानगर में दो दिन तक खलीलदास चतुर्वेदी से शास्त्रार्थ किया। बटाला में एक मौलवी से शास्त्रार्थ हुआ, वह पराजित होकर शुद्ध हो गया। पठानकोट में तीन मौलवियों से ९ घण्टे तक शास्त्रार्थ हुआ। ये थे मौलवी मोहम्मद ऊमर, मौलवी अल्लाहदित्ता तथा एक अन्य। तीनों ने हार स्वीकार की। पिण्डी भटियाँ में भी मौलवी मोहम्मद ऊमर परास्त हुये। रावलपिण्डी (पाकिस्तान की वर्तमान राजधानी) में प्रतिवर्ष मौलवियों से शास्त्रार्थ होता। श्रीनगर (काश्मीर) में भी कई दिनों तक निरन्तर शास्त्रार्थ किये। दीवानहाल दिल्ली में मौलवी मोहम्मद ऊमर से शास्त्रार्थ हुआ। कलकत्ता में अंग्रेज पादरी से शास्त्रार्थ करने गये। अपार

भीड़ एकत्रित हो गई, परन्तु पादरी का साहस नहीं हुआ, वह सामने ही नहीं आया।

भारत विभाजन के पश्चात् भी पण्डित जी ने देश भर में ईसाई, मुसलमानों तथा पौराणिकों से अनेक शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की। अमृतसर, अम्बाला छावनी, इलाहाबाद, खरड़, नानपारा, टांडा, गोंडा, कलकत्ता, झांसी, लखनऊ तथा सहारनपुर आदि नगरों में विभिन्न मतावलम्बियों के साथ शास्त्रार्थ किये। जैसे देश विभाजन से पूर्व मिर्जाई मत के मौलवी पण्डित जी से शास्त्रार्थ करने में तोबा कर गये, वही हाल स्वतन्त्र भारत में ईसाइयों का हुआ। पण्डित जी ने ईसाइयों के सबसे बड़े पादरी अब्दुल हक, पादरी वाशिंगटन तथा पादरी रलियाराम को इलाहाबाद में पराजित किया फलतः पादरी अब्दुल हक ने तो अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ करने से ही इन्कार कर दिया। बेस्ट (सहारनपुर) में पादरी गुलाममसीह ने शास्त्रार्थ से इन्कार करते हुये कहा कि आप हमारे गुरु पादरी अब्दुल हक से शास्त्रार्थ कर चुके हैं अतः मैं आपको पिता तुल्य मान कर आपसे शास्त्रार्थ नहीं करता।

इस प्रकार पण्डित शान्तिप्रकाश जी विगत ४५ वर्ष से आर्योपदेशक का कार्य कर रहे हैं। बयालीस वर्ष पर्यन्त आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में उपदेशक के पद पर कार्य किया जिसमें तीन वर्ष तक लाहौर में तथा १२ वर्ष पर्यन्त सभा का कार्यालय जालंधर आ जाने पर वेद प्रचार विभाग के अधिष्ठाता रहे। इसके अधिष्ठातृकाल में वेद प्रचार का वार्षिक बजट तीस चालीस हजार से बढ़कर एक लाख से भी ऊपर चला गया था। १९२५ ई. में आपने प्रचार कार्य प्रारम्भ किया था। अब सभा से सेवा निवृत्त होने के पश्चात् स्वतन्त्र रूपेण प्रचार कार्य करते हुये देश में सर्वत्र भ्रमण करते हैं। गत वर्ष पूना में आयोजित सर्वधर्म सम्मेलन में आपके व्याख्यान का व्यापक प्रभाव पड़ा।

शास्त्रार्थ काल के कतिपय संस्मरण—

बद्दोमल्ली (जिला स्यालकोट) में मिर्जाई मौलवी शास्त्रार्थ के प्रसंग में मुसलमानों और आर्यों में झगड़ा कराना चाहते थे। किन्तु पण्डित जी ने

मिर्जाइयों की पुस्तकों से ऐसे प्रमाण दिये जिससे उल्टे मिर्जाइयों और मुसलमानों में ही फसाद हो गया और अहरार पार्टी ने उक्त प्रमाण के लिये पण्डित जी का स्वागत किया। इसी प्रकार एक और शास्त्रार्थ में मिर्जा मुजफ्फर बेग १०० रु. की शर्त हार बैठे। अम्बाला छावनी के शास्त्रार्थ के फलस्वरूप दो पादरी शुद्ध हुये। कई बार शास्त्रार्थों में उपद्रव होने की स्थिति भी पैदा हुई परन्तु सभी स्थानों पर पण्डितजी ने स्थिति को सम्भाले रक्खा। पेशावर में गाली के स्थान पर छुरा चलता था। एक मिर्जाई मौलवी आर्य-समाज ढ़की नालबन्दी पेशावर में पण्डित जी के साथ शास्त्रार्थ समाप्त कर बाजार तक पहुँचा ही था कि मुसलमानों ने उसे छुरा मार कर समाप्त कर दिया।

सन् १९३५-३६ में सरकार ने कादियान केस के नाम से पण्डित जी के साढ़े छ घण्टे के एक व्याख्यान पर भारी अभियोग चलाया। सिकन्दर हयात के मन्त्रिमण्डल का यह आर्यसमाज पर पहला वार था। सरकार ने पण्डित जी की जबान बन्द कर दी। एक वर्ष तक अभियान चलता रहा। निचली अदालत से ६ मास का कठोर कारावास दण्ड मिला। सेशन जज मिस्टर मे ने अपील रद्द कर दी। लाहौर हाई कोर्ट में निगरानी स्वीकार हो गई और पण्डित जी बरी कर दिये गये। इस अभियोग में इनके मित्र पं. शिवदत्त जी सिद्धान्तशिरोमणि, मौलवी फाजिल ने हर प्रकार से सहायता की तथा महाशय कृष्ण ने दैनिक प्रताप में बीसियों अग्रलेख लिखे और पत्र के रविवारीय परिशिष्ट में पण्डित जी के फोटो प्रकाशित किये। इस अभियोग में पण्डित जी पर चालीस इल्जाम लगाये गये थे। इन्हें सिद्ध करने के लिये न्यायालय में १२० पुस्तकें प्रस्तुत की गईं। हाईकोर्ट तक केवल एक ही इल्जाम शेष रह गया। इसमें पण्डित जी ने मिर्जाई सम्प्रदाय की बीसियों पुस्तकों के प्रमाण दिये तथा अढ़ाई घण्टे तक स्वयं बोले। यह अभियोग आर्यसमाज की प्रतिष्ठा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का था तथा इस दौरान उन पर किसी भी समय आक्रमण किये जाने की सम्भावना रहती थी, परन्तु प्रभु कृपा से वे सुरक्षित रहे।

आप ने शास्त्रार्थ दर्पण, मेरा धर्म मुझे क्यों प्यारा है? शास्त्रार्थ अवतारवाद, पं. लेखराम आर्यपथिक सम्बन्धी भविष्य वाणियों की

खण्डनात्मक पुस्तकें तथा ईसाई मत पोल प्रकाश आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं। अन्तिम पुस्तक का अनेक भारतीय आर्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। आपने कुलियात आर्य मुसाफिर के कुछ भाग का हिन्दी अनुवाद भी किया तथा आर्यसमाज और उसकी आवश्यकता शीर्षक एक अन्य पुस्तक लिखी। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मुखपत्र आर्योदय के सम्पादक रहे तथा आर्य पत्र पत्रिकाओं के सैकड़ोंलेख भी लिखे। सम्प्रति आपका निवास स्थान जैकमपुरा गुड़गांव छावनी है।

"आर्यधर्म की उन्नति हो इसलिये मेरे सदृश बहुत से धर्मोपदेशक अपने इस देश में उत्पन्न होने चाहिये। एक व्यक्ति द्वारा यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। फिर भी अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल जो दीक्षा मैंने ली है उसे चलाऊंगा, ऐसा संकल्प किया हुआ है। आर्यसमाज की सर्वत्र स्थापना होकर मूर्तिपूजा आदि दुष्ट आचार कहीं न हों, वेदशास्त्र का सत्यार्थ प्रकाशित हो और उसके अनुकूल आचरण होकर देश की उन्नति हो, ऐसी ही ईश्वर से प्रार्थना है। तुम्हारी सब की सहायता से अन्तःकरणपूर्वक मेरी यह प्रार्थना सिद्ध होगी, ऐसी पूर्ण आशा है। और मैंने जो उपकार करना निश्चित किया है, जहां तक बन सकेगा, आमरण तक करूंगा, पुनर्जन्मान्तर में भी।"

—ऋषि दयानन्द का स्वकथित जीवनचरित

७. पं. ओमप्रकाश शास्त्री

आर्यसमाज के वर्तमान शास्त्रार्थमहारथियों में पण्डित ओमप्रकाश शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म देवबंद जिला सहारनपुर में सन् १९११ में हुआ। इनके पिता महाशय उमरावसिंहजी स्वामी दर्शनानन्दजी के व्याख्यान तथा शास्त्रार्थ सुनकर आर्यसमाजी बने थे। वे महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। पिता की इच्छा अपने पुत्र को दर्शनानन्द के तुल्य शास्त्रार्थ महारथी बनाने की थी। शास्त्रीजी की माता श्रीमती किशनदेवी ९५ वर्ष की परिपक्व आयु की हैं। पिता की मृत्यु १९४४ ई. में हो गई।

शास्त्रीजी की प्रारम्भिक शिक्षा देवबंद में ही हुई। पुनः १९२१ में ये गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रविष्ट हुये। यहाँ १४ वर्ष तक अध्ययन कर १९३४ में विद्याभास्कर की उपाधि उत्तीर्ण कर स्नातक बने। यहाँ से ही आपने 'शास्त्री' की उपाधि भी उत्तीर्ण की। स्वामी शुद्ध बोध तीर्थ, पण्डित भीमसेन शर्मा आगरावाले, पण्डित पद्मसिंह शर्मा तथा पण्डित नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ आपके व्याकरण, दर्शन, साहित्य तथा वेदविषयों के क्रमशः गुरु रहे। स्व० पण्डित रामचन्द्र देहलवी से आपने आर्य सिद्धान्तों का अध्ययन किया।

शास्त्रीजी का सार्वजनिक जीवन १९३१ से प्रारम्भ होता है जब कि आपने कांग्रेस के मंच से भाषण देना आरम्भ किया। सन् १९३४ से आर्य-समाज में बराबर पुरोहित तथा उपदेशक के रूप में प्रचार कार्य रहे हैं। सन् १९३६ से १९३९ तक आर्यसमाज चावड़ी बाजार दिल्ली (वर्तमान में आर्यसमाज, दीवान हाल) में पुरोहित रहे। उसके पश्चात् १९३९ में ही अखिल भारतीय स्वामी श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट की बिहार शाखा के इंचार्ज

के रूप में रांची में रहकर १९४२ तक कार्य किया। इनके अनन्तर १९४३ में खतौला जिला मुजफ्फरनगर में ईसाई मिशन के मुकाबिले में श्रद्धानन्द ट्रस्ट की नई शाखा का इंचार्ज बना कर नियुक्त किये गये। १९५१ तक यहां कार्य किया। पुनः आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश में १९६३ तक महोपदेशक के रूप में कार्य किया। दो वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के पुस्तकाध्यक्ष रहे। सम्प्रति सार्वदेशिक सभा के प्रतिष्ठित सभासद हैं। शास्त्रार्थ महारथी के रूप में—प्रारम्भ में पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी के समीप रहकर शास्त्रार्थ कला का अभ्यास किया तथा उसमें दक्षता प्राप्त की। एक बार देहलवीजी की आज्ञा से लाल कुआ स्थित चर्च से प्रज्ञाचक्षु पादरी अहमद मसीह, जिनके शास्त्रार्थ स्वामी दर्शनानन्दजी तथा देहलवी से होते थे, इन्होंने शास्त्रार्थ किया। फिर उक्त पादरी से अनेक शास्त्रार्थ देहलवीजी की उपस्थिति में किये। प्राय देहलवीजी स्वयं कुछ न बोल कर इन्हें ही शास्त्रार्थ करने के लिये कहते। इसी चर्च में प्रत्येक बुधवार को मौलाना खुदाबख्श से, जो मुहल्ला बल्लीमारान दिल्ली की एक मसजिद के इमाम थे, इनके शास्त्रार्थ हुये। शास्त्रार्थ के विषय प्रायः पुनर्जन्म, त्रैतवाद, नियोग आदि रहते। इसी बीच एक शास्त्रार्थ जीव तथा प्रकृति के अनादित्व तथा अस्तित्व पर कैम्ब्रिज मिशन के अंग्रेज पादरी श्री प्राइज के साथ भी हुआ। इन सभी शास्त्रार्थों में शास्त्रीजी को अपूर्व सफलता मिली। इसके पश्चात् तो श्री अब्दुल हक पादरी, मौलाना शेर मुहम्मद, मौलाना बशीर अहमद, पादरी वाशिंगटन, प्रयाग, पादरी, सादिक, पादरी लूक जैसे व्यक्तियों से सफलतापूर्वक शास्त्रार्थ होते रहे। गत जुलाई १९३९ को आर्य उप प्रतिनिधि सभा जिला सहारनपुर के तत्त्वावधान में 'बेहट' नामक स्थान पर पादरी गुलाम मसीह से दो शास्त्रार्थ लिखित तथा दो मौखिक मोक्ष तथा आवागमन विषय पर हुये जिनमें से दो लिखित शास्त्रार्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं।

सनातनधर्मियों से भी शंका समाधान और शास्त्रार्थ हुये । पण्डित माधवाचार्य, पण्डित राजनारायण 'अरमान', श्री प्रेमाचार्य तथा पण्डित दीनानाथ शास्त्री, सारस्वत जैसे पौराणिक पण्डितों को आपने सदा परास्त किया। विगत दिसम्बर १९६९ को काशी में आयोजित महर्षि दयानन्द शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह के अवसर पर पौराणिक पण्डित प्रेमाचार्य की शंकाओं का समाधान भी आपने ही किया। माधवाचार्य से भी इस अवसर पर आर्यसमाज के प्रतिनिधि रूप में आपको ही शास्त्रार्थ करने के लिये इस अवसर पर कहा गया, परन्तु यह शास्त्रार्थ शान्ति भंग हो जाने का आशंका के कारण प्रशासन अधिकारियों के हस्तक्षेप करने के कारण नहीं हो सका। उस उत्सव में आपका एक भाषण विशेष प्रभावशाली रहा, जिसका शीर्षक था 'साकारवाद की अन्त्येष्टि'। इसमें आपने बिना आर्यसमाज के किसी भी विद्वान् की एक भी पक्ति उद्धृत किये केवल शंकर, रामानुज, मध्व, सायण, हरिप्रसाद वैदिक मुनि, उव्वट, महीधर आदि के प्रमाणों के आधार पर साकारवाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा आदि अवैदिक सिद्धान्तों का खण्डन किया। 'प्रार्थना प्रबोध' तथा 'वृक्ष जड़ हैं' ये दो आपकी प्रकाशित रचनायें हैं। आप वैदिक धर्म के प्रचारार्थ सम्पूर्ण देश में अनवरत भ्रमण करते हैं।

पुनश्च—मेरी हार्दिक इच्छा थी कि इस पुस्तक में पं. विद्यानन्दजी मन्तकी, काशी निवासी, डा. हरिदत्तजी शास्त्री एकादश तीर्थ पं. सत्यमित्र शास्त्री तथा पं. रामदयालु शास्त्री आदि विद्यमान शास्त्रार्थ महारथियों के इतिवृत्त भी दिये जाते, परन्तु समयाभाव के कारण उपर्युक्त महानुभावों के विवरणों का संग्रह सम्भव नहीं हो सका। यदि पुस्तक के अगले संस्करण का कभी अवसर आया तो इन महानुभावों के शास्त्रार्थ विवरणों को देकर ग्रन्थ सर्वांगीण बनाने की चेष्टा की जायगी।

—लेखक

परिशिष्ट १

प्रकाशित शास्त्रार्थों की सूची

नाम ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
१ छपरा वृत्तान्त		आर्यावर्त कार्यालय, कलकत्ता
२ कोटा शास्त्रार्थ	मन्त्री आर्यसमाज कोटा	वैदिक यन्त्रालय, अजमेर १९५८ वि०
३ शास्त्रार्थ किराणा	पं. तुलसीराम स्वामी	स्वामी प्रेस, मेरठ १८९५ ई०
४ शास्त्रार्थ खुर्जा	पं. तुलसीराम स्वामी	देशोपकारक यन्त्रालय, प्रयाग १९४७ ई.
५ खुर्जा शास्त्रार्थ का पूर्व रंग	पं. तुलसीराम स्वामी	,, ,, ,,
६ शास्त्रार्थ कोपागंज	पं. शिव शर्मा	आर्यसमाज कोपागंज
७ शास्त्रार्थ भिवानी	पं. मंगलदत्त पुराणमार्तण्ड	आ. स. भिवानी १९२९ ई०
८ शास्त्रार्थ सुजानगढ़	पं. मंगलदत्त पुराणमार्तण्ड	आ. स. सुजानगढ़-अप्रैल १९३०
९ नीमच शास्त्रार्थ	श्री बलदेवप्रसाद, अजमेर	
१० शास्त्रार्थ नीमच	मास्टर शकुनचन्द	

	नाम ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
११	बून्दी शास्त्रार्थ	स्वामी नित्यानन्द, विश्वेश्वरानन्द	आ. स. शाहपुरा वै. यं., अजमेर १९४६ वि०
१२	,, ,,	सं. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी बी. ए.	आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान २०१३ वि०
१३	कानपुर वृत्तान्त		
१४	रोसड़ा शास्त्रार्थ	सुबोधचन्द शर्मा, चन्द्रनगर	(अखिलानन्द और ज्वालाप्रसाद मिश्र के बीच)
१५	शास्त्र चर्चा-अर्थात् दिल्ली दिग्विजय	पं. हरिदत्त शास्त्री	सेक्सरिया ग्रन्थमाला-२
१६	अपूर्व शास्त्रार्थ	स. रतनलाल शर्मा	आर्यसमाज डीडवाना १९५४ ई०
१७	उदासी बालकराम का मुंबई में कोलाहल,	वसनजी मुकुन्दजी देसाई	
१८	सिकन्दरबाद का शास्त्रार्थ	पं. देवेन्द्रनाथ शास्त्री	मुरारी ट्रैक्ट सोसाइटी
१९	शिवलिंगपूजा पर शास्त्रार्थ	म. प्रभुदयाल	आ. स. चौक, प्रयाग-२४
२०	राजधनवार के दो शास्त्रार्थ	सं. रामानन्द शास्त्री	आ. स. राजधनवार बिहार १९५३ई.
२१	शास्त्रार्थ पूर्णिया	पं, जे. पी. चौधरी	
२२	विधवा विवाह पर अनुपम शास्त्रार्थ		सुदर्शन प्रेस, खुर्जा १९३५ ई०

नाम ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशित
२३ पटना शास्त्रार्थ	पं. रुद्रदत्त शर्मा (सम्पादकाचार्य)	
२४ शास्त्रार्थ कडैल (अजमेर)	आर्यावर्त राँची के दि, ३१ दिसम्बर	१९०४ के अंक में छपा
२५ शास्त्रार्थ आगरा	(पं. भीमसेन शर्मा तथा पं. तुलसीराम	स्वामी तथा अन्य आर्य पण्डित)
२६ शास्त्रार्थ टिहरी गढ़वाल		
२७ शास्त्रार्थ तहसील गुन्नौर		
२८ शास्त्रार्थ नरसिंहगढ़	श्रावण शु. १९४५ वि.	गिरधारी शुक्ल नरसिंहगढ़ १८८८ ई.
२९ शास्त्रार्थ पीलीभीत	स्वा. सहजानन्द सरस्वती-अंगदराम शास्त्री	आ. स, बरेली मतबैकेसरी, प्रेस १८८८ ई०
३० जबलपुर शास्त्रार्थ	पं. भीमसेन शर्मा आगरा वाले	
३१ शास्त्रार्थ विष्णुगढ़	भारतसुदशाप्रवर्तक (फर्रुखाबाद)	अक्टूबर १८९१ में प्रकाशित
३२ टोंक का शास्त्रार्थ	डा. श्रीराम आर्य	खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला कासगंज

उर्दू में प्रकाशित शास्त्रार्थ

नाम ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
१ आगरा शास्त्रार्थ	स्वा० दर्शनानन्द सरस्वती	
२ शास्त्रार्थ देवरिया	,, ,,	
३ शास्त्रार्थ पेशावर	,, ,,	वैदिक धर्म प्रचार, ट्रैक्ट सोसाइटी पेशावर
४ शास्त्रार्थ जाखलमण्डी	ले० पं. मनसारामजी	
५ मुबाहसा नाहन	पं. भोजदत्त तथा मौ. निसारउल्ला अमृतसरी के बीच	सं. स्वा. स्वतन्त्रानन्दजी आर्यपुस्तकालय, अमृतसर
६ मुबाहसा मक्खनपुर	डा. लक्ष्मीदत्त व मौ. अबू पानीपती के बीच	सं. ताराचन्द बी. ए.
७ वैदिक धर्म की जबरदस्त फतह	पं. शेरसिंह आर्योपदेशक	

परिशिष्ट—२

मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ जिसमें उभय पक्षों ने प्रो० मैक्समूलर को मध्यस्थ स्वीकार कर डाक से व्यवस्था मंगाई।

पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि वजीराबाद में एक बार आर्यसमाज और पौराणिकों के बीच मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ हुआ और उसमें प्रो. मैक्समूलर को मध्यस्थ रूप स्वीकार किया गया। उभय पक्ष की बातें डाक द्वारा मैक्समूलर के पास भेजी गईं तथा उसने अपना निम्न पत्र भेजकर श्राद्ध के विषय में निर्णायक मत व्यक्त किया। यद्यपि प्रो. मैक्समूलर की इस व्यवस्था में दो टूक निर्णय न देकर दोनों पक्षों को ही संतुष्ट रखने का प्रयास किया गया है तथापि पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उनका पत्र यहाँ दिया जा रहा है—

Oxford, 13th September 1896.

My Friends,—My hair has long ago turned white and I have seen the children of my children. I have therefore the right to become a Vanaprastha, nay to enter the Ashrama of Sanyasa. But though I long for rest and peace, I receive so many letters not only from England, Germany, France, Italy but from America; and particularly from India, that I should literally have no time left to myself the whole day, if I were to attempt answer them all. Still when I received your first letter, I read it carefully and even began to answer it, afterwards I could not find it again. It had disappeared among my many papers, or some friend of mine to whom I had

shown it, must carried it away. I confess, however that I felt at the time what I feel even now, that you, with your intimate knowledge of the shastras, are far better judges than I am as to the original purpose of the Shraddha. You find something like your Shraddha among other Aryan nations also, who do not speak Aryan languages, It arose simply from a very natural human feeling to give up something that is dear to us, just as the bow and sacrificial vessels were thrown on the funeral piles to be burnt with the body of the deceased.

The question whether the departed would come back to take and eat the Pindas was never asked. It was enough to have given them and thus to have honoured the memory of our parents, grand parents and great grand parents. And these offerings were made originally at times when the remaining members of a family were gathered at a meal. The living also partook of the meals offered, or distributed them to worthy people. Hence the Shraddha was both for the departed and for the survivors. Very soon, howerver, superstition came on and people persuaded themselves that the departed spirits returned in a bodily shape to earth to partake of the offerings, and then the scoffers began to say that those Shraddhas were absurd because the departed spirits were never seen to consume them or benefit by them. In this way superstition always creates the scepticism of the Nastiks.

You get a very good definition of Shraddha in the Nirnaya Sindhu. There Marichi says—

प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः ।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम् ॥

In the same place it is stated that the Yajurvedas looked upon the Shraddha as Pinddanam, the Rigvedas as Dvijarchan, the Samvedas as both—

यजुषां पिण्डदानं तु बह्वृचानां द्विजार्चनम् ।
श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥

I hold that in this case the Samvedas were right and that the Shraddha was meant both as an honourable offering to the mritas and as an honour to the living, particularly of the Dwijas who came to assist at the Shraddha. These gifts should be bestowed on near relatives and friends, and I myself, as having studied the Vedas, have frequently received such Shraddha gifts from India, though I was not born in Aryavarta. Now I must close my letter being very busy, and I remain your friend and very distant Sapinda.

(sd.) F. Max Muller,

अर्थात्—मेरे मित्रों, मेरे केश श्वेत हो चुके हैं और मैं अपने पौत्रों का मुख देख चुका हूं। अतः मुझे वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करने का ही नहीं अपितु संन्यास ग्रहण करने का पूर्ण अधिकार है। यद्यपि मैं अब विश्राम और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने का इच्छुक हूं तथापि मुझे नित्यप्रति इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स, इटली, अमेरिका तथा भारत से इतने पत्र प्राप्त होते रहते हैं कि यदि मैं इन सबका उत्तर देने बैठूं तो मेरे पास इतना समय ही नहीं रहता है। परन्तु जब मैंने आपका प्रथम पत्र पढ़ा तो उसका उत्तर भी लिखने लगा, परन्तु बाद में वह मुझे नहीं मिला। सम्भवतः या तो वह मेरे अन्य कागजों में लुप्त हो गया अथवा उसे मेरा कोई मित्र ले गया जिसे मैंने वह पत्र दिखाया था। मैं स्वीकार करता हूं और उस समय भी मैंने अनुभव किया कि आपको, जिन्हें कि शास्त्रों का परिपूर्ण ज्ञान है, श्राद्ध विषयक निर्णय करने का मुझ से कहीं अधिक अधिकार है। आपके श्राद्ध की जैसी ही प्रथा आपसे भिन्न अन्य आर्य जातियों में भी पाई जाती हैं, तथा उनमें भी जो आर्य भाषायें नहीं बोलते हैं। यह प्रथा मनुष्य की उस प्राकृतिक अनुभूति से उत्पन्न हुई है जिसके अनुसार हम उस वस्तु को त्याग कर देने

के लिये तैयार होते हैं जो हमें सर्वाधिक प्रिय होती है। उदाहरण के लिये प्राचीन काल में धनुष तथा यज्ञ के पात्र मृतक की चिता पर फेंक दिये जाते थे।

यह प्रश्न कभी उठा ही नहीं कि मृत पितर उनके प्रति अर्पित पिण्ड का भक्षण करने आते हैं या नहीं। उन पिण्डों का अर्पण ही पर्याप्त समझा जाता था तथा इस प्रकार अपने पूर्वजों की स्मृति का सम्मान किया जाता था। और यह पिण्डदान भी उस समय किया जाता था जब कि एक परिवार के सभी सदस्य एक साथ भोजन के समय एकत्रित होते थे। जीवित पितर भी इन समर्पित भोजन पदार्थों को ग्रहण करते थे अथवा योग्य व्यक्तियों में उनका वितरण कर देते थे। इसलिये श्राद्ध दिवंगत और जीवित दोनों के लिये ही होता था। परन्तु शीघ्र ही लोगों में यह अंधविश्वास पनपने लगा कि दिवंगत आत्मायें मानवीय शरीर धारण कर आती हैं तथा पिण्डों को स्वीकार करती हैं। उसी समय श्राद्ध का उपहास करने वाले भी कहने लगे कि न तो मृत आत्मायें इन पिण्डों को खाती ही हैं और न इनसे उनका कोई लाभ ही होता है। इस प्रकार अंधविश्वास ही नास्तिकों के संदेहवाद का कारण बन जाता है।

निर्णयसिंधु में श्राद्ध की एक बड़ी अच्छी परिभाषा दी गई है। मरीचि कहते हैं—प्रेत तथा पितरों को निर्दिष्ट कर जो भोजन श्रद्धापूर्वक दिया जाता है उसे ही श्राद्ध कहते हैं। वहीं पर यह भी कहा गया है कि यजुर्वेद के अनुसार श्राद्ध का अर्थ है पिण्डदान, ऋग्वेद के अनुसार उसका अर्थ है द्विजार्चन तथा सामवेद में ये दोनों ही अर्थ स्वीकार किये गये हैं। मेरी सम्मति में सामवेद का कथन ही सत्य है जिसके अनुसार श्राद्ध का अर्थ मृतकों के प्रति सम्मान व्यक्त करना तथा जीवितों का आदर करना है। विशेषत: उन ब्राह्मणों का आदर करना जो श्राद्ध कृत्य में सहायता करने आते हैं। यह भेंट निकट के सम्बन्धियों और मित्रों को दी जानी चाहिये तथा मैंने स्वयं, जिसने कि वेदों का अध्ययन किया है, भारत से भेजी गई ऐसी श्राद्ध की भेंटों को प्राप्त किया है। यद्यपि मैं आर्यावर्त में उत्पन्न नहीं

हुआ हूं तथापि पत्र को समाप्त करते हुये इतना तो लिख ही दूँ कि मैं आपका मित्र तथा बहुत दूर का सपिण्ड हूँ।

—एफ. मैक्समूलर।

यद्यपि प्रो. मैक्समूलर की इस सम्मति में मृतक श्राद्ध के विषय में कोई निर्णायक मत व्यक्त नहीं किया गया है, तथापि भारतीय शास्त्रों के प्रति उनकी रुचि तथा भारत के प्रति उनकी श्रद्धा दर्शनीय है।

शास्त्रार्थ करते समय श्री महाराज के व्यक्तित्व की एक झलक—

"श्री महाराज की मूर्ति सौम्य कृपामयी थी, शास्त्रार्थ में एक अद्भुत तेज उनके मुख मण्डल पर दमकता था। विपक्षी का हृदय धाराप्रवाह वक्तृत्व से दहलने लगता था। जो कुछ उच्चारण करते मानो अभी रटकर लाये हों, जिस प्रकार परिश्रमी शिष्य अपने गुरु को निर्भीक पाठ सुनाता है। हमने कोई नोट व्याख्यान के समय उनके पास नहीं देखा। एक लगोटी और तहमत अथवा कभी कभी उपरने के सिवा (उसे भी उतार डालते थे) अन्य वस्त्रों की आवश्यकता न थी। आरम्भ में वे 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः' इस मंत्र को पढ़ कर ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करते थे। उस समय उनके चन्द्रानन पर शान्ति विराजती थी। समस्त सभा भवन शान्तमूर्ति बन जाता था, उनका मुखारविंद मुनि मनरंजन जैसा परम मनोहर लगता था। किन्तु विपक्षियों की आभा मंद पड़ जाती थी। उनके हृदय की गति बढ़ जाती थी।"

—एक प्रत्यक्षदर्शी (फर्रुखाबाद का इतिहास)

परिशिष्ट ३

शास्त्रार्थ युग की कतिपय मनोरंजक झलकियाँ

(१) गणपति गौरव

उस समय बी. जे. ग्लेन्सी (B. J. Glency) अजमेर के चीफ कमिश्नर थे। यह सनातनधर्म के कुख्यात पण्डित जगत प्रसाद[1] का भक्त था। उन दिनों जगत प्रसाद अजमेर आया। वह पौराणिकों का एक झुण्ड साथ लेकर घण्टा घडियाल बजाता तथा शंखनाद करता आर्यसमाज मंदिर में शास्त्रार्थ के लिये आया। पं. वंशीधरजी समाज के प्रधान थे तथा प्रसिद्ध विद्वान् पं. शिवशंकर शर्मा, काव्यतीर्थ को जगतप्रसाद की बकवास का उत्तर देने के लिये नियत किया गया। जगतप्रसाद की वाणी में तेजस्विता थी, यद्यपि वह विशेष पढ़ा लिखा नहीं था, परन्तु उसने नवीन न्याय की फक्किकाओं को कण्ठस्थ कर रक्खा था अतः बिना किसी प्रसंग के वह इस रटी रटाई नैयायिक शैली का प्रयोग कर श्रोताओं को आतंकित तथा प्रभावित कर सकता था। इधर पं. काव्यतीर्थजी अत्यन्त सौम्य एवं शान्त वाणी में बोलते जिसका सुनने वालों पर प्रभाव नहीं के बराबर होता। ऐसी स्थिति में आर्य-समाजपक्ष दुर्बल होता जा रहा था। संयोग से अपरान्ह वाली गाड़ी से शास्त्रार्थ कलाकुशल पं. गणपति शर्मा अजमेर पहुँचे। उन्होंने समाज मंदिर के निकट आते आते मंदिर में होने वाले जगतप्रसादी हुल्लड़ का रहस्य जान लिया। शर्मा जी चुपचाप जगतप्रसाद के पास आकर बैठ गये। उस समय 'आकृष्णेनरजसा' इस यजुर्वेद के मंत्र का प्रमाण देकर यह सिद्ध करना चाह रहा था कि वेदों में कृष्णावतार का उल्लेख है। पं. गणपति जगतप्रसाद

१. स्वयं सनातनी लोग भी जगतप्रसाद की धूर्तता से परिचित थे। पं. भीमसेन शर्मा सम्पादित 'ब्राह्मण सर्वस्व' में उसके विरुद्ध बहुतसी बातें प्रकाशित होती रहती थी। —लेखक

के पार्श्व में तत्काल खड़े हो गये और उसकी धूर्तता की प्रतारणा करते हुये बोले "जगत्प्रसाद 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' यजुर्वेद के इस मंत्र में तो मुझ गणपति की पूजा का विधान है। धूर्ताधिराज, मेरे चरणों में पड।" तत्काल पासा पलट गया। धूर्तराज भाग खडा हुआ। लोगों ने पं. गणपतिजी का जयजयकार किया। मटमैला साफा पहने हुये गणपति के चेचक के दाग युक्त मुख पर भी विजय की मुस्कराहट थी।

—पं. ब्रह्मदत्तजो सोढ़ा के सौजन्य से

---

(२) मसूदा शास्त्रार्थ का प्रकाशन—

मसूदा (राजस्थान) में ऋषि दयानन्द का स्थानकवासी जैनसाधु सिद्धकरण से विस्तृत लेख बद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। इसका विवरण अजमेर से प्रकाशित होने वाले तत्कालीन मासिक पत्र देशहितैषी के सं. १९३९ के अंकों में प्रकाशित हुआ था। इसी समय मसूदा के राव बहादुरसिंह जी ने ऋषि की उपस्थिति में ब्यावर के ईसाई पादरी से शास्त्रार्थ किया था। यह अलभ्य शास्त्रार्थ वृत्तान्त ८८ वर्ष पश्चात् पुनः डा. भवानीलाल भारतीय द्वारा खोजा जाकर प्रकाशित किया जा रहा है।

परिशिष्ट ४

शास्त्रार्थों के कुछ रोचक प्रसंग

☐ मौलाना सनाउल्ला अमृतसरी से डॉ. लक्ष्मीदत्तजी (सुपुत्र पं. भोजदत्तजी शर्मा आर्यमुसाफिर आगरा) का शास्त्रार्थ हो रहा था। प्रश्न था कि शैतान क्या है ? कैसा है ? इस पर मौलाना साहब ने एक शेर पढ़ा—

'रात शैतां को ख्वाब में देखा।'

तत्काल डा. साहब ने मौलवी साहब की ओर हाथ का संकेत करते हुए कहा—

'सारी सूरत जनाब की सी थी।'

मौलाना झेंप गये और जनता ठहाका मार कर हंस पड़ी। ☐

☐ गोरखपुर में पं. धर्मभिक्षुजी से ईश्वर के मुख्य नाम पर शंका समाधान चल रहा था। पण्डितजी 'ओम्' को ईश्वर का मुख्य नाम बता रहे थे, जब कि मौलवी साहब का कहना था कि 'अल्लाह' ईश्वर का मुख्य नाम है। इस पर वहाँ उपस्थित पं. बिहारीलाल शास्त्री ने आर्यसमाज के मंत्री को आदेश दिया कि वे मौलवी साहब को सोड़ा वाटर पेश करें। तुरन्त बोतल मंगाई गई। मौलाना सोड़ा पी गये और पीते ही डकार आई ओं। इस पर पं. जी बोल पड़े क्यों मौलाना, अब आपके मुंह से 'अल्लाह' नहीं निकला। उपस्थित लोग हंस पड़े। मौलाना साहब भी मुस्कराने लगे। ☐

☐ बदायूं के शास्त्रार्थ में एक ओर २३ मौलवी थे जब कि उनके मुकाबिले में आर्यसमाज की ओर से अकेले पं. धर्मभिक्षु। मौलवी साहब ने वेद के एक सूक्त की ओर संकेत करते हुए कहा कि वेदों का एक ऋषि 'मत्स्य' भी है, क्या वेदों का इलहाम मछलियों को भी हुआ था ? पं. धर्मभिक्षु ने उत्तर देते हुए कहा कि ऋषि मनुष्य ही थे, नाम था उनका मत्स्य, वैसे ही जैसे आपके एक पैगम्बर का नाम था 'अबू हुरैरा' यह उनका नाम था, न कि वे बिलौटे (बिल्ली का बच्चा) थे, क्योंकि अरबी भाषा में 'हुरैरा' बिल्ली को कहते हैं। इस पर मौलवी साहब चुप्पी साध गये। शास्त्रार्थ तो समाप्त हो गया, किन्तु शास्त्रार्थ सभा के प्रधान मैकू मियां ने मौलवियों को अपने घर बुलाकर फटकारा और कहा कि उन्हें लानत है जो वे एक जरा से कायस्थ के लड़के (पं. धर्मभिक्षु) से हार गये। ☐

☐ लखनऊ में पं. धर्मभिक्षु मौलवियों से पुनर्जन्म पर शास्त्रार्थ कर रहे थे। मौलवी साहब ने कहा—यदि पुर्नजन्म सत्य है तो बताइये कि आप पूर्व जन्म में क्या थे। पं. धर्मभिक्षु ने आव देखा न ताव, कह बैठे—मैं पूर्व जन्म में तुम्हारा बाप था। अब मौलवी को भी गुस्सा आया और बोल पड़े नहीं तुम मेरी जोरू थे। पं. धर्मभिक्षु शान्त होकर बोले—"कोई बात नहीं, मैं तुम्हारी जोरू ही था, किन्तु पुनर्जन्म तो सिद्ध हो ही गया।" मौलवी झेंप कर रह गये। ☐

☐ एक मेले में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए भजनीक ने मांस भक्षण का खण्डन करते हुए भजन गाया—

"मांस मांस सब एक से क्या बकरी क्या गाय।"

इस पर एक मुसलमान साहब खड़े होकर कहने लगे कि सब मांस एक से नहीं होते, मैं बता सका हूँ कि यह मांस बकरी का है, यह गाय का है। इस पर बहस छिड़ गई। मुसलमान सज्जन भी अपनी जिद पर उतर आया और

कहने लगा कि आप मांस मंगाइये, में पहचान कर बता दूंगा कि किस पशु का है। इस पर पं. बिहारीलाल शास्त्री ने खड़े हो कर कहा—"मियांजी आपकी आयु क्या है ?" मियांजी बोले–"सत्तर साल"। इस पर पण्डितजी ने कहा—"दोस्त, सत्तर साल की उम्र तक गोश्त की पहचान ही करते रहे, यदि खुदा की पहचान करते तो जिन्दगी बन जाती।" इस पर मियांजी झेंप गये। □

□ ठा. अमरसिंह (वर्तमान में महात्मा अमर स्वामी) का शास्त्रार्थ बच्छोमल्ली (पश्चिमी पाकिस्तान) में पं. माधवाचार्य से होने वाला था। जैसे ही ठाकुर साहब मंच पर पहुंचे, पं. माधवाचार्य ने कहा, लो ये आ गये मुझ से शास्त्रार्थ करने वाले। पहले लाहौर में सारंगी बजाते थे, अब शास्त्रार्थ करेंगे। स्मर्तव्य है कि ठा अमरसिंह गानविद्या में रुचि रखते थे और सारंगी जैसे वाद्य को निपुणता से बजा लेते थे। पं. माधवाचार्य के कथन के भीतर निहित व्यंग्य को लक्ष्य कर तुरन्त ठा. अमरसिंह बोल पड़े—

"सुनिये, सारंगी बजाने से हमारा शास्त्र ज्ञान कम नहीं होता, न मेरी विद्या में ही कोई कमी आती है, बल्कि मैं तो अब पौराणिकों के भगवानों में शामिल हो गया। देखो, शिवजी डमरू बजाते हैं, कृष्ण बांसुरी बजाते थे, नारद वीणा बजाते हैं। ये सभी तुम्हारे पूज्य हैं तो सारंगी बजाने वाला मैं भी तुम्हारे देवताओं की कोटि में आ गया।" पं. माधवाचार्य तिलमिला कर रह गये। □

□ नाभा (पंजाब) की सिक्ख रियासत में एक बार म. म. आर्यमुनि का किसी पौराणिक पण्डित से शास्त्रार्थ हुआ। जब पौराणिक पक्ष निर्बल पड़ने लगा तो पौराणिक पण्डित ने सिक्ख मतावलम्बी नाभा नरेश को, जो उस सभा में उपस्थित थे, यह कह कर भड़काने का प्रयास किया कि महाराज, इन आर्यों के गुरु दयानन्द ने स्वग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में बाबा नानक की

आलोचना की है। अतः आपको गुरुनिन्दक आर्यसमाजियों को अपने राज्य से बाहर निकाल देना चाहिए। महाराजा हीरासिंह समझदार तथा विचार-शील थे। वे बोल उठे "नानक भी बाबा और दयानन्द भी बाबा। यदि एक बाबे ने दूसरे बाबे के बारे में कुछ कहा या लिखा है तो उसके बीच में हम बोलने वाले कौन होते हैं?" सनातनी पण्डित की भड़काने वाली कार्यवाही निष्फल रही। □□

परिशिष्ट ५

आर्यसमाज के शास्त्रार्थ-महारथियों के प्रकाशित जीवनचरित

१. **स्वामी विरजानन्द**—पं. लेखराम, पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी वेदानन्द तीर्थ तथा पं. भीमसेन शास्त्री द्वारा लिखित ।

२. **स्वामी दयानन्द**—डा. भवानीलाल भारतीय रचित जीवनचरित नव-जागरण के पुरोधाः दयानन्द सरस्वती (प्रकाशक—वैदिक पुस्तकालय, अजमेर) में स्वामीजी के सभी शास्त्रार्थों का विस्तृत विवरण निबद्ध किया गया है ।

३. **पं. लेखराम**—स्वामी श्रद्धानन्द तथा प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु रचित जीवन चरित—रक्तसाक्षी पं. लेखराम ।

४. **पं. गणपति शर्मा**—सं. भवानीलाल भारतीय

५. **स्वामी दर्शनानन्द**—डा. भवानीलाल भारतीय (मधुर प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित ।

६. **पं. धर्मभिक्षु लखनवी का जीवनचरित**—ले. सुभद्रा देवी आर्या

७. **पं. मुरारीलाल शर्मा**—डा. हरिशंकर शर्मा तथा पं. श्रीराम शर्मा द्वारा

८. **पं. भोजदत्त का जीवनचरित**

९. **एक मनस्वी जीवन (पं. मनसाराम वैदिक तोप)—ले.**—प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु

१०. **जीवनयात्रा** (पं. बुद्धदेव मीरपुरी)—ले. जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

११. **शास्त्रार्थ केसरी अमर स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ**—सं. ठाकुर विक्रमसिंह

१२. **शास्त्रार्थ महारथी पं. बिहारीलाल शास्त्री अभिनन्दन विशेषांक**—वेद प्रकाश दिल्ली (अगस्त १९७३ ई.)

परिशिष्ट (१) में प्रकाशित शास्त्रार्थ (पूरक सूची)

क्रम संख्या	नाम ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन-काल
१.	शास्त्रार्थ—वैश्य लोगों को वैदिक कर्म कराने का अधिकार है या नहीं ? (हिन्दी तथा मराठी में)	हीरालाल गोपाल शर्मा	बम्बई	१८८७ ई.
२.	शास्त्रार्थ रानीगंज (वासुदेव त्रिपाठी की उर्दू रिपोर्ट)	रुद्रदत्त शर्मा—गोविन्दराम शास्त्री	स्वामी प्रेस, मेरठ	१९५६ वि.
३.	शास्त्रार्थ देवरिया	रुद्रदत्त शर्मा	भारतरत्न प्रेस, पटना	१९०२ ई.
४.	शास्त्रार्थ पत्र		आर्यसमाज चंदौसी	१८९६ ई.
५.	कानपुर शास्त्रार्थ	शिवशंकर मिश्र	आर्यसमाज रेल बाजार, कानपुर	१९१८ ई.
६.	शास्त्रार्थ अम्बहरा		आर्यसमाज अम्बहरा	१९७५ ई.

७. चंदौसी शास्त्रार्थ— हरिजन समस्या पर	देवेन्द्रनाथ शास्त्री अखिलानन्द शर्मा	आर्यकुमार सभा चंदौसी	१९३३ ई.
८. देहली का शास्त्रार्थ	देवेन्द्रनाथ शास्त्री चन्द्रभानु शर्मा	आर्यसमाज नया बांस, दिल्ली	
९. शास्त्रार्थ अमरावती		आर्यसमाज अमरावती	
१०. शास्त्रार्थ प्रदीप	रहतूलाल आर्य	प्रेम पुस्तकालय, आगरा	१९४८ ई.
११. बांकनेर का शास्त्रार्थ	ओमप्रकाश आर्य	आर्यसमाज अरणिया	१९६० ई.
१२. पुण्यलोक : शास्त्रार्थ विशेषांक	वेदमुनि परिव्राजक	वैदिक संस्थान, बिजनौर	१९६६ ई.
१३. शास्त्रार्थ के चैलेंज का उत्तर	श्रीराम आर्य	वैदिक साहित्य प्रकाशन, कासगंज	२०१८ वि.
१४. पं. शान्तिप्रकाश के शास्त्रार्थ	सं. अशोक आर्य	आर्य युवक समाज, अबोहर	१९७२ ई.
१५. ऐतिहासिक शास्त्रचर्चा	हरिदत्त शास्त्री	आर्यसमाज नया बांस, दिल्ली	१९७६ ई.
१६. निर्णय के तट पर	अमर स्वामी सरस्वती	अमर स्वामी प्रकाशन, गाजियाबाद	१९७९ ई.
१७. शास्त्रार्थ—एक शंकराचार्य से	अमर स्वामी सरस्वती	विक्रम ठाकुर दिल्ली	
१८. भारपाड़ा बध-काव्य (बंगला)	दीनबन्धु वेदशास्त्री	कलकत्ता	
१९. मुबाहिसा देहली (उर्दू)	रामचन्द्र देहलवी	इन्द्रप्रस्थ आर्य बुक एजेन्सी दिल्ली	

स्वामी दयानन्द के शास्त्रार्थ विषयक ग्रन्थ

१.	दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह	रघुनन्दनसिंह निर्मल सं.	आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली	१९६९ ई. प्र. सं.
२.	दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह	भवानीलाल भारतीय सं.	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़	१९७० ई. प्र. सं. १९८२ ई. द्वि. सं.
३.	ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन	भवानीलाल भारतीय एवं युधिष्ठर मीमांसक (सं.)	रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़	२०३९ वि. १९८२ ई.

□□